विज्ञान

प्रो० साहनी जन्मशती अंक

नवम्बर 1991

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
नवम्बर 1991; वर्ष 77 अंक 8

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे
यह अंक : 10 रु०

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

अपनी बात

लगभग दो माह पहले की बात है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभागाध्यक्ष **प्रो० देवेन्द्र दत्त नौटियाल** 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की अंतरंग सभा की एक बैठक में स्थानीय अंतरंगी के रूप में परिषद् में उपस्थित थे। सभा की कार्यवाही समाप्त होने के बाद बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे बताया कि विश्वविद्यालय का वनस्पति विभाग विश्वविख्यात पादप जीवाश्म विज्ञानी स्वर्गीय प्रोफेसर बीरबल साहनी की जन्मशती धूमधाम से मनाने की योजना बना रहा है, उन्होंने मुझसे भी सहयोग करने के लिए कहा। किन्तु उस समय मैं स्वयं भी नहीं समझ सका कि इस सम्बन्ध में मैं क्या सहयोग कर सकता हूँ।

बाद में अचानक एक दिन प्रो० नौटियाल द्वारा भेजा गया एक पत्र मिला। साहनी जन्मशती समारोह की योजना के सम्बन्ध में उन्होंने विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यापकों और शोधछात्रों के अतिरिक्त कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज के वनस्पति विभाग के अध्यापकों सहित विश्वविद्यालय से सम्बद्ध इविंग क्रिश्चियन कॉलेज और सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज के वनस्पति विज्ञान विभाग के समस्त अध्यापकों को बुला रखा था। कुछ दूसरे विभागों के अध्यापक भी दिखे।

इस सभा में छोटी-छोटी उपसमितियाँ बनाई गयीं। इसी सभा में मुझे पहली बार प्रो० नौटियाल की महत्वाकांक्षी योजना का परिचय मिला तथा यह भी आभास हुआ कि किस समर्पित भाव से वे साहनी जन्मशती समारोह की रूपरेखा तैयार कर रहे हैं। मैं प्रोफेसर नौटियाल को अगस्त 1963 से जानता हूँ जब वे विश्वविद्यालय में प्रवक्ता थे इसलिये मैं उनकी लगन, कार्य कुशलता, कर्तव्यपरायणता, मृदु व्यवहार और किसी भी कार्य को समर्पित भाव से करने की निष्टा से पूर्व परिचित था। वहीं अनौपचारिक वार्तालाप में यह भी पता चला फि उनका चुनाव आगामी भारतीय अंटार्कटिक यात्रा दल के एक सदस्य के रूप में अंटार्कटिका के जीवाश्मों के अध्ययन के लिये हो चुका था, किन्तु चूंकि साहनी जन्मशती समारोह का भार उनके कन्धों पर पहले से था इसलिये प्रो० नौटियाल ने अंटार्कटिका जाने के लिये अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। योजना के प्रति उनके इस एकनिष्ठ भाव से अवश्य ही समारोह की गुणवत्ता में वृद्धि होगी।

प्रो० नौटियाल प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी (पादप जीवाश्म विज्ञानी) **प्रो0 दिव्यदर्शन पंत** के शिष्य हैं, जिन्हें **प्रो0 बीरबल साहनी** के प्रिय शिष्य होने का सौभाग्य और गौरव प्राप्त है और परम्परा की मर्यादा के अनुरूप ही विश्यविद्यालय के वनस्पति विभाग द्वारा प्रो0 साहनी जन्मशती की यह बृहत् योजना गनाई गई है।

प्रो0 नौटियाल मेरे हिन्दी प्रेम से परिचित हैं और उन्होंने मुझसे हिन्दी में कुछ करने को कहा। उनके सामने मैंने एक प्रस्ताव रखा कि 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा अप्रैल 1915 से निरन्तर प्रकाशित लोकप्रिय मासिक पत्रिका "विज्ञान" का नवम्बर 1991 अंक, मैं "विज्ञान" का सम्पादक होने के नाते, "प्रोफेसर बीरबल साहनी जन्मशती अंक" के रूप में निकालने का प्रयास कर सकता हूँ। किन्तु इस समय तक इस अंक के लिए योजनाबद्ध

कार्यकर सकना सम्भव नहीं था क्योंकि "विज्ञान" का अक्टूबर अंक छप चुका था और नवम्बर अंक की सामग्री प्रेस में थी।

प्रेस की भाग-दौड़ के बाद नवम्बर अंक को दिसम्बर अंक करवाया और साहनी अंक की तैयारी प्रारम्भ की। दिसम्बर अंक प्रेस के सहयोग से 20 अक्टूबर तक छपकर तैयार हो गया।

इसलिए "प्रो० बीरबल साहनी जन्मशती अंक" को जिस सज-धज के साथ प्रकाशित होना चाहिये था, वैसे सम्भव नहीं हो सका। एक कठिनाई और भी। आज भी पढ़े-लिखे लोग हिन्दी में लिखना—अपनी राष्ट्र भाषा में लिखना—गौरव की बात है, यह नहीं समझ सके है। यह राष्ट्र और राष्ट्रभाषा दोनों का दुर्भाग्य है।

मैं उन लोगों में से हूँ, जिन्हें प्रो० साहनी के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला है। 10 अप्रैल 1949 को उनके स्वर्गवास के समय मैंने छठीं कक्षा का इम्तहान तो दे दिया था पर परीक्षाफल भी नहीं निकला था। बी० एस-सी० प्रथम वर्ष में जब मैं सेण्ट एण्ड्रूज कॉलिज, गोरखपुर का विद्यार्थी था तब पहली बार मैंने प्रोफेसर साहनी का नाम अपने वनस्पति विज्ञान के अध्यापकों—श्री राजेन्द्र सहाय, श्री जी० सी० श्रीवास्तव और श्री डेविड नवीन सेन से सुना। डॉ० सहाय गोरखपुर विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, डॉ० सेन जोधपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष हैं तथा डॉ० श्रीवास्तव सेण्ट एण्ड्रूज कॉलिज में विभागाध्यक्ष हैं।

प्रो० साहनी को तो मैंने नहीं देखा किन्तु उनकी सहधर्मिणी श्रीमती सावित्री साहनी के दर्शन का मुझे सौभाग्य मिला है। अपने पति की असामयिक मृत्यु के पश्चात् जिस जीवट और दूरदर्शिता से श्रीमती साहनी ने पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट के नवांकुर को सींचकर वटवृक्ष की गरिमा प्रदान की उसका उदाहरण शायद ही अन्यत्र कहीं मिले। पहली बार श्रीमती साहनी से मैं 1959 में मिला जब गोरखपुर विश्वविद्यालय के एम० एस-सी० द्वितीय वर्ष के वनस्पति विज्ञान छात्र-दल के साथ दशहरे के अवकाश में मैं बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पेलियोबॉटनी में अध्ययन हेतु गया। उस समय सम्पूर्ण भारत से एम० एस-सी० के विद्यार्थी पुरावनस्पति विज्ञान के अध्ययन के लिये लखनऊ जाते थे।

हम विद्यार्थियो के दल [राजेन्द्र मिश्र, माधवानन्द तिवारी (5 अगस्त 1991 को दिवंगत), राजेन्द्र सिंह प्रेमशंकर लाल, विजय कुमार, विश्वम्भर लाल अरोड़ा, सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, कु० कनक वर्मा, कु० सुमन चौधरी और मैं प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव] के साथ विभाग के अध्यापक डॉ० एस० के० राय (अब काशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर) और श्रीमती सविता गांगुली थीं। श्रीमती गांगुली प्रो० साहनी की शिष्या थीं। हमारा इस संस्थान में आना विभागाध्यक्ष और मेरे गुरु प्रो० कामेश्वर सहाय भार्गव की प्रेरणा से ही सम्भव हो सका था।

उस समय श्रीमती साहनी पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट की सभापति (प्रेसिडेन्ट) थीं। इंस्टीट्यूट में उस समय डॉ० के० आर० सुरंगे (निदेशक), डॉ० आर० एन० लखनपाल, डॉ० डी० सी० भारद्वाज, डॉ० आर० वी० सिथोले ? डॉ० विष्णु मित्रे, डॉ० एम० एन० बोस आदि वैज्ञानिक सम्बन्धित विषयों पर व्याख्यान देते थे और उसके बाद मेजों पर क्रम से रखे जीवाश्मों के (सैकड़ों की संख्या में) नमूनों के हम लोग चित्र बनाते थे और पहचान नोट करते थे। ऐसे ही समय श्रीमती गांगुली को देखकर श्रीमती साहनी स्वयं आयीं और उनसे कहा कि अपने विद्यार्थियों को बुलायें।

जब हम सभी एकत्र हो गये तो उन्होंने जो वाक्य कहा वह मुझे आज भी ज्यों का त्यों याद है। "स्टूडेण्ट्स ! डू यू नो ? योर टीचर श्रीमती गांगुली हैज बीन आवर स्टूडेण्ट ।"

"Students ! Do your know ? Your teacher Smt. Ganguli has been our student."

हमें यह बात मालूम थी कि श्रीमती गांगुली प्रोफेसर साहनी की शिष्या थीं, किन्तु तब तक यह नहीं मालूम था कि किसी अध्यापक की पत्नी अपने पति के शिष्य-शिष्याओं से इतना स्नेह रख सकती हैं। श्रीमती साहनी के द्वारा अध्यापिका श्रीमती गांगुली को "our student" (हमारी शिष्या) कहना—प्रोफेसर साहनी के साथ एकात्म भाव से उन्हें अपनी शिष्या समझना—मुझे अभिभूत कर गया। श्रीमती साहनी को देखने के बाद, उनसे बात करने के बाद, उनके प्रति सहज ही श्रद्धा उमड़ पड़ती थी। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना रहना असम्भव था।

हम लोग 11 दिनों तक (3 नवम्बर से 13 नवम्बर 1959) पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट में अध्ययनरत रहे और इस दौरान प्रतिदिन श्रीमती साहनी के दर्शन होते थे। तब से अब तक लगभग 32 वर्ष व्यतीत हो गये हैं। आज फिर श्रीमती साहनी, डॉ० सुरंगे, डॉ० लखनपाल, डॉ० भारद्वाज, पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट, वहाँ की पत्थर काटने के यन्त्र, जीवाश्म को काटकर स्लाइड तैयार करने के यन्त्र और विधि, जीवाश्मों के नमूने, इंस्टीट्यूट का अनुशासन और स्वच्छता—सभी की स्मृति बार-बार चलचित्र की तरह आँखों के सामने घूम रही है। उस समय पता चला था कि 'बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पेलियाबॉटनी', विश्व के चार सर्वश्रेष्ठ पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट्स में से एक था। अब मुझे पता नहीं विश्व में पेलियोबांटनी के कितने संस्थान हैं। पर लखनऊ पुरावनस्पतिक संस्थान की महत्ता तब भी अतुलनीय थी और आज भी है। संस्थान से प्रो० साहनी के वैज्ञानिक व्यक्तित्व की विराटता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

जिस दिन 11 दिनों का पेलियोबॉटनी से सम्बन्धित अध्ययन समाप्त हुआ उस दिन सभी विद्यार्थी, अध्यापक और पेलियोबॉटनी संस्थान के वैज्ञानिकों को श्रीमती साहनी की ओर से जलपान का निमन्त्रण मिला। इस अवसर पर ही मैंने पहली बार उत्तर प्रदेश सरकार के तत्कालीन राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि (जो बाद में भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति बने), प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी प्रो० श्री रंजन (जो इलाहाबाद बिश्वविद्यालय में थे) और श्री कांजी लाल (जिन्होंने भारतीय वनस्पतियों पर एक पुस्तक—Flora) भी तैयार की थी, को पहली बार देखा। श्री गिरि ने हमें सम्बोधित भी किया था। श्री रंजन अपने शिष्यों को नाम से पहचानते थे। उन्होंने हमारी सहपाठिका कु० सुमन चौधरी को पहचान लिया जो एक वर्ष पूर्व उनकी शिष्या रह चुकी थीं। उसी अवसर पर श्री कांजी लाल को कहते सुना—"भाई रंजन पहचाना नहीं ? मैं कांजी लाल हूँ।"

किसी अँग्रेजी धुन के धीमे-धीमे बजते संगीत की पृष्ठभूमि में चाय चल रही थी और श्रीमती साहनी एक-एक व्यक्ति से इस आत्मीयता से मिल रहीं थीं जैसे यह उनके घर का कोई व्यक्तिगत समारोह हो। हमें श्रीमती साहनी और डॉ० सुरंगे के हस्ताक्षरों से युक्त प्रमाण-पत्र भी मिले थे।

लखनऊ से वापस आने के बाद हम संस्थान की ढेरों मधुर स्मृतियाँ साथ लाये थे, जिन्हें मैंने आज भी बड़े यत्न से संजोकर रखा है।

प्रो० साहनी जैसे विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिक की जन्मशती समारोह में सम्मिलित होना मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। यह भी मेरा सौभाग्य है कि इस समय मैं "विज्ञान" पत्रिका का सम्पादक हूँ और इस रूप में इस

कार्यक्रम में अपना आंशिक सहयोग दे सकता हूँ। हाँ, एक बात का दुःख अवश्य है कि समयाभाव न होता तो यह अंक आप जिस रूप में देख रहे हैं इससे कुछ श्रेष्ठ, कुछ और पठनीय हो सकता था।

इस अंक के प्रकाशन में मुझे देश के वयोवृद्ध रसायनज्ञ, आर्य समाज के प्रचारक और संन्यासी **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष **प्रो० दिव्यदर्शन पंत**, वर्तमान विभागाध्यक्ष **प्रो० देवेन्द्र दत्त नौटियाल**, रसायन विभाग के प्रोफेसर और शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान के भूतपूर्व निदेशक **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** और सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, वनस्पति विभाग के अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष **डॉ० जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव** से जो प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग मिला है, उसके लिए मैं इन सभी को हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैं अपने कर्तव्य के पालन में असफल रहूँगा यदि मैं इस अंक को तैयार करने में जिन नये-पुराने लेखकों, पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं और शोध लेखों की सामग्री का उपयोग किया है, उन सभी के प्रति स्वयं अपना और विज्ञान परिषद् प्रयाग का आभार न व्यक्त करूँ।

अन्त में मैं प्रसाद मुद्रणालय के स्वामी **श्री अरुण राय** और विज्ञान परिषद् प्रयाग के टाइपिस्ट **श्री चन्द्रभान सिंह** का भी आभारी हूँ जिनके सहयोग के बिना यह अंक यह रूपाकार ग्रहण नहीं कर सकता था।

इन शब्दों के साथ मैं प्रोफेसर बीरबल साहनी की स्मृति को कोटिशः प्रणाम करता हूँ।

●●

विश्वविख्यात वैज्ञानिक आचार्य साहनी

प्रो० दिव्यदर्शन पन्त

रविवार तारीख 3 अप्रैल 1949 की शाम को 6 बजे, जब **पंडित जवाहर लाल** नेहरू ने बड़े धूमधाम के साथ गुरुदेव **आचार्य बीरबल साहनी** के पुरावनस्पति विज्ञान मन्दिर (पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट) का शिलान्यास किया था, तब यह किसने सोचा था कि निष्ठुर दैव संसार के इस अमर वैज्ञानिक के मृत शरीर का दाहकर्म उसके केवल 7 ही दिन बाद, ठीक उसी समय, और उस सुन्दर पुरातन वनस्पति अवशेषों से जटित शिला के सामने ही करवायेगा? आचार्य साहनी की इस आकस्मिक और असामयिक मृत्यु से संसार का एक महान वैज्ञानिक ही नहीं, वरन् वनस्पति-शास्त्र का एक धुरन्धर विद्वान सदा के लिए उठ गया। **सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन्** ने एक बार कहा था कि आचार्य साहनी मनुष्यों में एक महान रत्न हैं—देखने में सुन्दर, सुदृढ़ और सुडौल शरीर वाले, व्यवहार में विनयशील और बिनम्र। विज्ञान के अनन्य सेवक आचार्य साहनी सचमुच ही एक नर-रत्न थे।

अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

जन्म और शैशव

आचार्य साहनी का जन्म 14 नवम्बर 1891 को पंजाब के भेड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपकी माता **श्रीमती ईश्वर देवी** अपने शील और सुन्दर स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थीं। आपके पिता **लाला रुचिराम साहनी** गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर के रसायनशास्त्र के आचार्य और एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। आचार्य साहनी प्रो० **रुचिराम** को अत्यन्त प्रिय थे। सन् 1942 में जब लेखक को आचार्य साहनी के अल्मोड़ा स्थित निवास-स्थान पर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तब उन्होंने कहा था—"बीरबल मुझे बचपन से ही बहुत अधिक प्रिय है। बीरबल और उसकी धर्मपत्नी **सावित्री** मेरी सबसे अधिक सेवा-सुश्रूषा करते हैं।" आचार्य साहनी भी अपने वृद्ध पिता को बहुत प्रेम करते थे। मैंने स्वयं देखा है कि जब कभी उनका कोई लेख छप कर आता था तो वे सबसे पहले अपने हाथ से उसकी एक प्रतिलिपि लाला जी को भेजते थे।

बालक बीरबल का बाल्यकाल भेड़ा में ही बीता था। बचपने से ही इन्हें पतंग उड़ाने, डाकखाने के टिकट, केकड़े, पत्थर, पेड़-पौधे आदि जमा करने का बड़ा शौक था। टिकट जमा करने के लिए यह अक्सर आधे रास्ते तक जा कर पोस्टमैन को पकड़ लेते थे, ताकि इनके और भाई-बहन टिकट न ले सकें। अपने नटखटपन में कभी-कभी यह भेड़ा की मुसलमान जाटनियों के चर्खे तोड़ डालते। इनसे बिगड़ कर, इनको चिढ़ाने के लिए वे कहा करती थीं :

'बीरबला भे बीरबला। सैंया कदी ना होये तेरा भला'

केम्ब्रिज में

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर से सेन्ट्रल माडल स्कूल और गवर्नमेंट कॉलेज में समाप्त करने बाद सन् 1911 में श्री साहनी केम्ब्रिज के इमेनुअल कॉलेज में पढ़ने के लिए विलायत को रवाना हुए और वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण सन् 1919 तक वहीं रहे।

आरम्भ के ही बीरबल बड़े सत्यवादी, निर्भीक और न्यायप्रिय थे। इनकी बी० एस-सी० की परीक्षा के प्रश्नपत्रों में से एक पत्र में उससे पहले साल के सारे प्रश्न फिर से पूछे गये थे। बीरबल ने यह बात एक परिदर्शक को बतलाई और जब उसने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया तो यह उसी क्षण बाहर निकल आये। बाद में विश्वविद्यालय की सीनेट ने विद्यार्थियों की बात को न्याय-संगत मान लिया, और उस विषय में पुनः परीक्षा ली गई। केम्ब्रिज में भी आप ने अपने चरित्रबल का परिचय दिया। वहाँ की प्रवेशिका परीक्षा में जिस संस्कृत पुस्तक के एक अंश का आपको भावार्थ लिखना था, वह पुस्तक परीक्षा भवन में न थी। इस पर आपने परिदर्शक को यह बात बतलाते हुए कहा, कि यदि वे आज्ञा दें तो आप अपने कमरे से अपनी पुस्तक ला सकते हैं, परन्तु उसमें आपने किनारे पर पेंसिल से नोट लिख रक्खे हैं। इनकी स्पष्टवादिता को देख कर परिदर्शक ने श्री साहनी को बिना किसी देख-रेख के अपने कमरे में जाकर पुस्तक लाने की आज्ञा दे दी। वे अपने कमरे से पुस्तक ले आये और बिना नोट देखे भावार्थ लिख डाला। बाद में **प्रो० सीवर्ड** ने, जो उस समय विज्ञान के प्रधान थे, इनकी इस बात से मुग्ध होकर इन्हें चाय पर निमन्त्रित किया। एक नये विद्यार्थी के लिए यह बहुत बड़ा सम्मान था। इसके बाद एक दिन जब कि बीरबल ट्राइपॉस में ही पढ़ते थे, उन्होंने **गिंगो** (*Ginkgo*) नामक वृक्ष के बीज के अन्दर किसी अन्य वृक्ष के पराग को अंकुरित होते हुए देखा। यह एक विचित्र बात थी जिसे बीरबल ने प्रोफेसर सीवर्ड को दिखाया। बीरबल की तीव्र दृष्टि को देखकर प्रोफेसर सीवर्ड ने

उनकी बहुत प्रशंसा की और उन्हें उस विषय में एक छोटा सा लेख लिखने को प्रोत्साहित किया। फलतः यह श्री साहनी का वैज्ञानिक अनुसन्धान सम्बन्धी प्रथम लेख वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध पत्र 'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' में 1915 में छपा और प्रोफेसर सीवर्ड की विद्वता और प्रोत्साहन से प्रभावित हो श्री साहनी विज्ञान के आजन्म सेवक बन गये।

संग्रह और अध्ययन की प्रवृत्ति

बीरबल पहले भी से एक परिश्रमी विद्यार्थी थे जो केवल कोर्स की पुस्तकों का ही नहीं वरन् और भी कई पुस्तकों और जानने योग्य बातों का अध्ययन करते रहते थे। केम्ब्रिज में आपने बहुत सी स्लाइडें बनायीं और बहुत से प्रस्तरावशेष जमा किये जिनकी सहायता से बाद में आप अपने शिष्यों को पढ़ाया करते थे। अपने विशाल पुस्तकालय के लिए भी लेखों और पुस्तकों का संग्रह आपने यहीं से आरम्भ कर दिया था।

केम्ब्रिज में आपने बड़ी सादगी का जीवन व्यतीत किया। आपने अपने माता-पिता से बिना किसी धन की सहायता के अपनी 90 पौंड वार्षिक की छात्रवृत्ति से ही अपने सब खर्च पूरे कर लिये। कभी-कभी आप अपना खर्च पूरा करने के लिए एक ही बार खाकर रह जाते थे। विलायत जाते समय आप अपने साथ कुछ पायजामें और कमीज ले गये थे। इन्हीं से आपने आठ वर्ष तक अपना काम चलाया। एक बार जब आपका कोट काज के किनारे पर फट गया था, तब आप ने उसे दूसरी तरफ बदल दिया। जब लोग आपसे इस विचित्र बदलाव का कारण पूछते तो आप बिना मुस्कराये ही बेधड़क होकर कहा करते कि यही नया फैशन है।

केम्ब्रिज में पढ़ने के साथ ही आपने लन्दन विश्वविद्यालय की एम० एस-सी० और बाद में डी० एस-सी की उपाधियाँ भी प्राप्त की। आप के अनुसन्धान कार्य की महत्ता को समझकर लन्दन की 'रायल सोसायटी' और इमेनुअल कॉलेज, दोनों ने आप को आर्थिक सहायता दी। इसके अतिरिक्त आप गर्मियों में म्यूनिख में भी अध्ययन करने जाते थे। इस प्रकार यूरोप और ब्रिटेन के प्रायः सभी बड़े-बड़े वनस्पतिविज्ञान वेत्ताओं से आपका निकट सम्पर्क हो गया, जिसमें आपके गुरु प्रोफेसर सीवर्ड और डॉ० स्काट विशेष उल्लेखनीय हैं।

लन्दन से डी० एस-सी० की उपाधि लेकर श्री साहनी सन् 1919 में भारत लौट आये और हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त किये गये। परन्तु तत्काल साइंस कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ० गणेश प्रसाद से कुछ अनबन हो जाने के कारण आपने 1920 में बनारस से त्यागपत्र दे दिया और आप लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में उसी पद पर नियुक्त किये गये। सन् 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय के स्थापित होने पर आप वहाँ पर वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त हुए और अन्तिम दिन तक उस पद की शोभा को बढ़ाते रहे। इसके अतिरिक्त आप कई साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के प्रधान भी रहे। सन् 1943 में जब आप के ही प्रयत्नों से लखनऊ में भूगर्भ-विभाग खुला तो आप उसके भी आचार्य नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालय की इन तिहरी सेवाओं के साथ-साथ आपका अपना अनुसन्धान कार्य और आपके शिष्य वर्ग का निरीक्षण तो चलता ही रहता था, किन्तु इसके अतिरिक्त जीवन के अन्तिम तीन-चार वर्षों से आप पुरावनस्पति विज्ञान-मन्दिर के संचालन का भी काम कर रहे थे। इतने सब कामों को एक साथ इतनी सुन्दरता से बहुत कम लोग सँभाल सकते हैं, लेकिन आपको अपने इन सब कामों में जो सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री साहनी के सहयोग, सहायता और सहानुभूति को भी है। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुरावनस्पति विज्ञान-मन्दिर को देकर आप दोनों ने विज्ञान और राष्ट्र

को वास्तव में अपना सर्वस्व दे दिया। श्रीमती साहनी मन्दिर की प्रबन्धक समिति की आजन्म अध्यक्ष के रूप में आचार्य साहनी के प्रबन्ध कार्य में हाथ बँटाती रही थीं और कई वर्षों तक आपकी देख-रेख में यह मन्दिर, इस महान क्षति के होने पर भी, पूर्ववत् उन्नति करता रहा।

आचार्य साहनी का वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य केम्ब्रिज में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में कुछ कार्य जीवित वनस्पतियों पर करने के बाद आपने भारतीय वनस्पति अवशेषों की दोबारा जाँच-पड़ताल आरम्भ कर दी। इसका वर्णन आपके पहले **फीस्टमान्टेल** आदि विदेशी वैज्ञानिकों ने किया था, जिसमें आपने अनेक त्रुटियाँ पायीं और इन्हीं अवशेषों को खोज निकाला। इसी प्रकार आपने और भी कई भारतीय वनस्पति अवशेषों का अन्वेषण किया जो कि भारत में ही नहीं वरन् विज्ञान के लिए सर्वथा नवीन हैं। आप के इन अनुसन्धानों के विस्तृत वर्णन 'रायल सोसायटी' के 'फिलॉसोफिकल ट्रान्जेक्शन' और अन्य प्रसिद्ध विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपे हैं। आपकी मृत्यु के बाद आप के लगभग 80 लेख अभी और छपने की बाकी थे। अपने लेखों में आप ने पुरातन वनस्पति अवशेषों का ही विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया वरन् इनके आधार पर उनके कुल सम्बन्ध, वनस्पतिक जगत् के विकास तथा तत्कालीन भूगोल और जलवायु के विषय में अत्यन्त सुन्दर और विश्वास करने योग्य श्रेष्ठ गवेषणायें हैं। इसके अतिरिक्त आपके अनुसन्धान से **वेगनर** के महाद्वीप विभाजन सिद्धान्त, दक्षिण पठार की आयु, ग्लॉसोप्टेरिस वनस्पतियों की उत्पत्ति और स्वभाव तथा मनुष्य जाति की उत्पत्ति के बाद हिमालय के उत्थान आदि जटिल तथा विवादास्पद भूगर्भ और वनस्पतिविज्ञानविषयक समस्याओं को हल करने में सहायतायें मिली हैं।

पुरातत्व और पुरावनस्पति-तत्व

आप का अनुसन्धान कार्य वनस्पति और भूगर्भ विज्ञान तक ही सीमित नहीं है। अपने पुरातत्व सम्बन्धी भी अनेक अन्वेषण किये हैं। पुरातत्व में आपकी रुचि बहुत पहले से ही थी। एक बार तो आप इस बात पर अनिश्चित थे कि आप पुरातत्व का अध्ययन करें या पुरावनस्पति विज्ञान का। एक बार रोहतक के पास यमुना की उपत्यका का भ्रमण करते समय आपको खोकरा कोट नामक स्थान पर कुछ टूटे हुए मिट्टी के ठप्पे मिले, जिनमें सिक्कों के चिन्ह बने हुए थे। बाद में वहाँ पर खुदाई करवाने पर आपको उसी प्रकार के हजारों ठप्पे और सिक्के मिले जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ पर ईसा से 100 वर्ष पूर्व यौधेय राजाओं की टकसाल रही होगी। इन ठप्पों की सहायता से अपने तत्कालीन सिक्के ढालने की विधि का विस्तृत वर्णन लिख डाला और इस कार्य के लिये आपको 'भारतीय न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी' ने एक पदक प्रदान किया। अनुसन्धान कार्य के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से आपने विज्ञान की सेवा की है। वास्तव में आपको भारतीय वनस्पति विज्ञान का जन्मदाता कहा जा सकता है। पुरावनस्पति-विज्ञान-मन्दिर के अतिरिक्त आपने भारतीय वनस्पति विज्ञान-परिषद्, अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस, भारतीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय विज्ञान मन्दिर और 'करेन्ट साइन्स' आदि की स्थापना और संचालन में विशेष भाग लिया है। वनस्पति विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियों के लिये **प्रो० लॉसन** की पाठ्यपुस्तक का भारतीय संस्करण लिख कर आपने इस देश में वनस्पति विज्ञान के प्रचार में बहुत बड़ी सहायता की है। इस सुन्दर पुस्तक को आपने तभी लिख दिया था जब कि आप केम्ब्रिज में पढ़ते थे। इसके लिये आपको केवल 80 पौंड मिला और आपसे इस प्रकार की कोई दूसरी पुस्तक न लिखने की प्रतिज्ञा करा ली गई, जिस पर आप जीवन भर दृढ़ रहे।

शिष्यों के प्रिय अध्यापक

आचार्य साहनी एक प्रख्यात वैज्ञानिक होने के साथ ही एक अत्यन्त योग्य अध्यापक और आचार्य भी थे। बहुधा दोनों हाथों से चित्र बना कर आप अपने विद्यार्थियों को बड़े चाव और रोचक ढँग से पढ़ाते थे। इनमें योग्य नवयुवकों को अनुसन्धान कार्य में प्रोत्साहित कर तथा उन्हें इसकी उत्तम शिक्षा-दीक्षा देकर आपने वनस्पति विज्ञान का जो प्रचार इस देश में किया है उसके लिए हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे। अनेक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आपके शिष्य वनस्पति विज्ञान और विशेष कर पुरावनस्पति विज्ञान के अध्यापक हैं। इस देश में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में भी आपने बहुत बड़ा भाग लिया है। समय-समय पर आप जन-साधारण के लिए सरल तथा सरस भाषा में लेख और भाषण दिया करते थे। आपका शिक्षा-कार्य विद्यालय के कमरों तक ही सीमित न था। बहुधा आप विद्यार्थियों के साथ वनस्पतियों और पुरावनस्पतियों के संग्रह और अध्ययन के लिए उन क्षेत्रों में भ्रमण करने जाते थे, जहाँ वे पाई जाती हैं। इन अवसरों पर आप विद्यार्थियों ही के साथ तीसरे दर्जे में यात्रा करते, उन्हीं के साथ भोजन करते और उन्हीं के साथ रहा करते थे। अपने साथियों और शिष्यों के सुख-दुःख का आपको सदैव ध्यान रहता था। एक बार जब हमलोग राजमहल की पहाड़ियों में आपके साथ भ्रमण कर रहे थे तब दिन की कड़ी धूप में बहुत देर चलने के बाद सब को बहुत प्यास लग आई। बड़ी कठिनाई से एक कुँआ मिला। आचार्य साहनी ने अपने हाथ से कई बार किसी और बर्तन के न होने पर एक टिफिन केरियर में पानी खींच कर हम लोगों को पिलाया और स्वयं सबको पिला चुकने के पश्चात् ही पिया। यदि आपके साथियों या शिष्यों में से कोई बीमारी अथवा अन्य किसी संकट में पड़ जाता था तो आपको बड़ा मानसिक कष्ट होता था; और उसकी सहायता करने के लिए आप भरसक प्रयत्न करते थे। किन्तु इस सहृदयता और दयाभाव से कोई अनुचित लाभ नहीं उठा सकता था। उचित अनुशासन, कर्तव्य-परायणता के आप सदैव प्रेमी थे। स्वयं रात्रि होने तक कॉलेज में अपना काम करते रहते थे और अपने शिष्यों से बहुधा कहा करते थे कि अनुसन्धान कार्य में 99 प्रतिशत परिश्रम की आवश्यकता है और केवल एक प्रतिशत बुद्धि की।

विश्व-व्यापी सम्मान

विज्ञान की इन बहिर्मुखी सेवाओं के उपहार स्वरूप अनेक विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको सब प्रकार से सम्मानित किया। सन् 1929 में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने आपको एस-सी० डी० की उपाधि प्रदान की। इस उपाधि को पाने वाले आप प्रथम भारतीय हैं। 1936 में आप को लन्दन की 'रॉयल सोसायटी' के पाँचवें भारतीय फेलो निर्वाचित किया गया। इसी प्रकार आप और भी कई देशी तथा विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं के फेलो थे जिनमें अमेरिकन एकेडेमी ऑफ आर्ट्स, साइन्सेज एण्ड लेटर्स, भारतीय तथा राष्ट्रीय-वैज्ञानिक एकेडेमी (जिनके आप दो बार सभापति और उप-सभापति भी रह चुके हैं), राष्ट्रीय विज्ञान मन्दिर (जिसके आप उप-सभापति भी रह चुके हैं), और भारतीय वनस्पति विज्ञान परिषद् (जिसके आप सभापति भी रह चुके हैं) आदि मुख्य हैं। अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस के तो आप 1921 और 1938 में वनस्पति विज्ञान के अध्यक्ष, 1926 में भूगर्भ विज्ञान के अध्यक्ष और 1940 में प्रधानाध्यक्ष रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त आप अनेक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सभाओं में भारत के प्रतिनिधि और दो अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान काँग्रेस के उप-सभापति रह चुके हैं। आप 1950 में स्टाकहोम में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पतिविज्ञान काँग्रेस के सभापति निर्वाचित हो गये थे।

सच्चे देशभक्त

एक प्रसिद्ध शिक्षक और वैज्ञानिक होने के साथ ही आचार्य साहनी एक सच्चे देशभक्त भी थे। खद्दर और स्वदेशी के तो आप पहले से ही प्रेमी थे। स्वच्छ सफेद खद्दर की अचकन, चूड़ीदार पायजामा, गाँधी टोपी और लाल पंजाबी जूता पहने हुए आप अपने सुन्दर रूप और स्वभाव से सबको मुग्ध और प्रभावित कर लेते थे। सन् 1922 में जब वेल्स के युवराज लखनऊ विश्वविद्यालय में पधारे थे तो आपने उनका वहिष्कार किया था। काँग्रेस के पहले आन्दोलन के समय आप उसमें शामिल होना चाहते थे किन्तु बाद में आपने विज्ञान द्वारा ही देश सेवा करना अपने लिए यथेष्ट समझा। देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन के साथ आपकी सच्ची सहानुभूति सदैव बनी रही। मुझे अच्छी तरह याद है कि स्वतन्त्रता-दिवस के अवसर पर जब एक बार कुछ को छोड़कर सब विद्यार्थी हड़ताल पर थे तो आपने उनको भी अपने साथियों का अनुकरण करने को कहा और हाजिरी तक न ली। स्वदेशी के साथ-साथ आप राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसमें विज्ञान की शिक्षा के भी बहुत प्रेमी थे।

सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले इस विश्वविख्यात देशभक्त वैज्ञानिक के साथ कुछ ही देर रहकर मनुष्य अनेक बातें सीख सकता था। मुझे तो कई साल तक उनकी छत्रछाया में रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे न जाने कितनी बड़ी देन मिल गई हो।

●●

पुरानी यादें

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

प्राचीन साहित्य में मेरी रुचि लगभग बचपन से ही रही और इसीलिए निरन्तर वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् आदि मेरे अध्ययन और अनुशीलन के प्रिय विषय रहे हैं, किन्तु मेरे क्षेत्र में प्राचीनता और विज्ञान का कभी कुछ प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा। अँग्रेजी भाषा में एक शब्द का प्रयोग बहुत बाद को मैंने जाना और सीखा और वह शब्द है 'पेलियो', जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—पुरा या पुरातन और सम्भवतया पुराना, पुराण आदि अनेक शब्द इसी अर्थ में प्रयोग होते हैं। वनस्पतिशास्त्र के सम्बन्ध में इस उपसर्ग के प्रयोग से एक शब्द बनता है पुरावनस्पति या पेलियोबॉटनी (Palaeobotany)। एक अन्य शब्द भी है पेलियोन्टॉलोजी (Palaeontology)। दोनों के अध्ययन का विषय एक ही है। भग्नावशेषों या जीर्णावशेषों का अध्ययन। साधारणतया व्यक्ति वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं से काफी हद तक परिचित है और मनुष्य के इनसे परिचय की परम्परा बहुत पुरानी है। शास्त्रीय ढँग से इनके अध्ययन में कुछ भिन्नता उपस्थित हो गयी है। भूगर्भकालिक कोई भग्नावशेष हो और उनके अध्ययन करने, संयोग से कोई फूल पत्ती, परागकण पड़ा रह गया हो और जिसने अपनी उपस्थिति के कुछ चिन्ह भी विचित्र रूप से छोड़े हों, तो उनके अध्येताओं की एक अन्य श्रेणी बन जाती है।

ऋतम्भरा, विज्ञान परिषद् परिसर, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

मैंने बचपन में सुना था कि संसार के अनेक स्थानों में 30-40 लाख पुराने झुलसे या भुने जैसे गेहूँ के बीज पाये गये हैं। वैदिक साहित्य में मैं बराबर पढ़ता रहता हूँ कि संसार के अत्यन्त पुराने अन्नों में 'व्रीहि' (चावल) या 'यव' (जौ) और यदा-कदा तिल (व्रहिमत्तं यवमत्तयथो माषमथोतिलम्) हैं। किन्तु भग्नावशेष के रूप में पाया गया गेहूँ वस्तुतः गेहूँ था या जौ यह कहना कठिन है। 'यजुर्वेद' के अध्याय में जौ और चावल के अतिरिक्त अनेक अन्य अन्नों की सूची भी पायी जाती है—

व्रीहियश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे

नीवाराश्च मे गोधूमाष्च मे मसूराश्च मे यज्ञो कल्पन्ताम।

—'यजुर्वेद संहिता' अध्याय 18, श्लोक 12

गेहूँ के अतिरिक्त और कौन-कौन से शस्य हैं, जिनके अवशेष पुरा इतिहास के निर्माण में सहायक हुए, यह कहना कठिन है।

अपने विद्यार्थी काल में मुझे मालूम नहीं था कि प्रयाग के निकट ही लखनऊ नामक नगरी में बीरबल साहनी नाम के एक ऐसे आचार्य भी हैं जो पेलियोबॉटनी या वनस्पति के भूगर्भकालिक अवशेषों का शास्त्रीय ढंग से विशेष अध्ययन करते हैं। मेरा प्रवेश प्रयाग के विश्वविद्यालय में इण्टरमीडिएट कक्षा में 1921 में हुआ और संभवतया बहुतों को आज यह पता भी न होगा कि इलाहाबाद विष्वविद्यालय में उस समय वनस्पतिशास्त्र के अध्ययन का कोई विभाग भी न था। प्राणिशास्त्र की एक छाटी प्रयोगशाला थी और एक प्रो० वुडलैण्ड महोदय, जिनका मुख्यतः सम्बन्ध इविंग क्रिश्चियन कॉलेज से था, इसकी देख-रेख करते थे। जिस भवन में आज वनस्पतिशास्त्र पढ़ाया जाता है न वह भवन था और न वनस्पतिशास्त्र की कोई अस्मिता थी। क्रिश्चियन कॉलेज में दो अध्यापक थे—डॉ० डजन और डॉ० वुडलैण्ड।

मेरा सम्बन्ध तो गणित, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र और अँग्रेजी से था। उस संक्रान्ति काल में जब मैं म्योर कॉलेज में आया तो श्री ड्वल्फ कुलपति थे। प्रो० एस० जी० डंड अंग्रेजी के यशस्वी प्रोफेसर थे और प्रो० मूडी गणित के। केवल दो भीरतीय थे—डॉ० सर नीलरत्न धर (रसायन विज्ञान विभाग के अध्यक्ष) और डॉ० सर सफात अहमद खाँ (इतिहास में)। उस समय तक प्रयाग विश्वविद्यालय के द्वारा ही लखनऊ विश्वविद्यालय, आगरा और बरेली के कालेजों की परीक्षा होती थी। कॉन्वोकेशन के स्नातक प्रयाग के सिनेट हाल में साज-सज्जा के साथ उपाधि लेते थे। काशी विश्वविद्यालय और उसकी नकल में मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ बाद में अस्तित्व में आयी।

सभी यह जानते हैं कि काशी विश्वविद्यालय की स्थापना महात्मा गाँधी के द्वारा महामना मदन मोहन मालवीय जी ने करायी। उन्होंने प्रारम्भ में देश भर के विद्वानों को आमन्त्रित करके काशी विश्वविद्यालय को सम्पन्न बनाया था। पंजाब विश्वविद्यालय के डॉ० शिवराम कश्यप का नाम बहुत विख्यात था। डॉ० बीरबल साहनी डॉ० कश्यप के शिष्य थे। काशी विश्वविद्यालय के प्रथम चयन में सम्भवतया बीरबल साहनी योग्य अध्यापक की हैसियत से लन्दन से 1919 में वापस आने के बाद नियुक्त हुए। काशी विश्वविद्यालय में डॉ० गणेश प्रसाद साइंस कॉलेज के प्रिंसिपल थे। गणित के क्षेत्र में उनकी विशेष ख्याति थी। यह उनकी ही देन है कि थोड़े समय के भीतर ही इलाहाबाद विश्वविद्यालअ में तीन योग्य अध्यापकों की नियुक्ति हुई। सबसे पहले डॉ० बद्री नाथ प्रसाद आये। कुछ समय के बाद

ही प्रो० प्यारे मोहन आये और बाद को एडिनबरा से लौटने पर डॉ० गोरख प्रसाद। ये तीनों ही डॉ० गणेश प्रसाद के शिष्य थे। मेरा काशी विश्वविद्यालय में आना जाना डॉ० एस० जोशी और प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा के सम्पर्क से हुआ। मुझे यह बात बहुत बाद में मालूम हुई कि डॉ० गणेश प्रसाद से डॉ० बीरबल साहनी किसी बात पर नाराज हो गये और काशी विश्वविद्यालय से त्यागपत्र देकर पहले चण्डीगढ़ और बाद में 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के प्रथम प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। इस समय तक डॉ० साहनी काफी विख्यात हो चुके थे।

प्राणिशास्त्र विषय के दो विद्वान व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में अच्छा काम किया था। वे थे—डॉ० कर्मनारायण बहल और डॉ० थापर। दोनों पंजाबी थे। दोनों से मेरा अच्छा परिचय था। डॉ० बहल 1935-1938 तक 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के सभापति भी रहे। पर वास्तविकता यह है कि अब तक डॉ० बीरबल साहनी से मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ था।

1947 में भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ। आखिरी अंग्रेज गवर्नर जेनेरल लार्ड माउण्टबेटन और बाद में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी थे। पाकिस्तान अलग हो गया था। उत्तर प्रदेश में पहली मिनिस्ट्री पं० गोविन्द बल्लभ पन्त की थी और दूसरे शिक्षा मन्त्री थे बाबू सम्पूर्णानन्द। पहली पंक्ति की पहली मिनिस्ट्री में पहले शिक्षा मन्त्री मेरठ के एक वकील श्री प्यारे लाल शर्मा थे, जिनके काम और नाम से आज बहुत कम लोग परिचित हैं। बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन पहले स्पीकर थे।

प्रो० साहनी की रुचि धीरे-धीरे पुरावनस्पतिकी में बढ़ती गयी और वे अनेक बार भारत से बाहर गये। उनके साथ उनकी पत्नी श्रीमती सावित्री साहनी भी गयीं। सावित्री जी की शिक्षा-दीक्षा वनस्पतिशास्त्र में तो नहीं हुई थी किन्तु डॉ० साहनी के साथ बराबर रहती थीं और जहाँ कहीं भी साहनी गये, वे भी गयीं और पति के सम्पर्क से उन्हें भी पुरावनस्पतिशास्त्र में अच्छा ज्ञान हो गया। सम्भवतया यही कारण था कि डॉ० साहनी की मृत्यु के अनन्तर श्रीमती साहनी अपने पति के पुरावनस्पतिक संस्थान की सभापति और निदेशिका बनीं। प्रो० बीरबल साहनी की मृत्यु के बाद मैं उनकी प्रयोगशाला में गया और मेरा सावित्री जी का अच्छा परिचय रहा। उनके बाद ही सम्भवतया डॉ० के० आर० सुरंगे ने पुरावनस्पतिकी संस्थान के निदेशक पद का भार सँभाला।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा मन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी से मेरा स्नेह सम्बन्ध बराबर बना रहा। उनके शिक्षा मन्त्रित्व काल में उत्तर प्रदेश में कतिपय शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला।

1. डॉ० हृदय नाथ कुंजुरू की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेश में यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमेटी (उस समय तक केन्द्र में यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन नहीं थी) बनी।

2. डॉ० के० एस० कृष्णन की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेश की साइन्टिफिक रिसर्च कमेटी गठित हुई।

3. उत्तर प्रदेश की राजकीय स्तर पर हिन्दी समिति बनी।

इस बात का यहाँ उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद जब डॉ० साहनी दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त हो गये तो उन्हें लखनऊ में ही रहकर अपनी रुचि का कार्य करने के लिए राजी करने में पं० गोविन्द बल्लभ पंत और डॉ० सम्पूर्णानन्द की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

डॉ० के० एस० कृष्णन प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष थे, किन्तु दिल्ली में डॉ० शान्ति स्वरूप भटनागर ने जो राष्ट्रीय प्रयोगशाओं की शृंखला आरम्भ की थी उसमें डॉ० के० एस० कृष्णन को निदेशक बनाकर दिल्ली ले गये। कृष्णन ने प्रयाग के पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके कुछ समय के बाद प्रयाग विश्वविद्यालय की भौतिकी विभाग की अध्यक्षता प्रो० रामन के एक दूसरे शिष्य ने सँभाली। बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने प्रयाग में आर्य विश्वविद्यालय के एक अध्यापक श्री परमानन्द जी को यू० जी० सी० (डॉ० कुँजरू वाली) कमेटी का मन्त्री बनाया और मुझको साइन्टिफिक रिसर्च कमेटी का सदस्य एवं सचिव बनाया। कृष्णन वाली कमेटी के समय उ० प्र० की सरकार को यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमेटी (कुँजरू कमेटी) के माध्यम से भेजे जाते थे और ग्राण्ट्स कमेटी की स्वीकृति पर ही अनुदान दिये जाते थे। डॉ० कृष्णन कमेटी के प्रारम्भिक सदस्यों में बीरबल साहनी का नाम इस समिति के सदस्यों में था। कुछ तो यूनिवर्सिटी के सदस्य थे और एक प्रतिनिधि कानपुर एग्रीकल्चर कॉलेज और एक हार्टिकल्चर के थे। इस समय तक दिल्ली की न तो यूनीवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन सक्रिय थी और न काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक रिसर्च। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सम्बन्ध इन केन्द्रीय संस्थाओं से बराबर रहा है। यू० जी० सी० के चेयरमैन प्रो० यशपाल जी विज्ञान परिषन् के भी सभापति रहे हैं और डॉ० आत्माराम का सहयोग तो अनेक रूपों में प्राप्त होता रहा है। उनकी पत्नी श्रीमती सीता देवी ने डॉ० आत्माराम जी की स्मृति में एक व्याख्यान माला के लिए बीस हजार रुपयों की एक राशि भी विज्ञान परिषद् प्रयाग को प्रदान की है। अनेक दृष्टियों से प्रयाग के विज्ञान परिषद् की स्थापना विशेष आश्चर्यजनक अर्थ रखती है। परिषद् अपने जन्म के समय, 10 मार्च 1913, से लेकर 1991 तक के परिवर्तनों को बड़ी कौतूहलता से यह देखती आयी है कि काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को छोड़कर हिन्दी में विज्ञान पक्ष को पालती-पोसती, जीती-जागती कोई और संस्था नहीं है।

ब्रिटेन की 'रॉयल सोसायटी' ने भारत के कई वैज्ञानिकों को अपनी सोसायटी की सदस्यता प्रदान करके गौरवान्वित किया है। बीरबल साहनी भी इसी शृंखला में 1936 में ब्रिटेन की रॉयल सोसायटी के सदस्य निर्वाचित हुए।

सन् 1660 ई० में रॉयल सोसायटी की स्थापना हुई थी। 1960 में इस सोसायटी का धूम-धाम से 300 वर्ष पूरे होने की खुशी में लन्दन में एक विशेष समारोह हुआ जिसमें मैं और मेरी पत्नी ने हाल की बालकनी में बैठकर समारोह का आनन्द लिया। डॉ० हिसलवुड उस समय रॉयल सोसायटी के सर्वोपरि अध्यक्ष थे और ग्रेट ब्रिटेन की रानी ने इसका उद्घाटन किया था। इंग्लैंडवासियों के लिए यह रॉयल सोसायटी सर्वोपरि संस्था है। हम भारतीय भी इस संस्था की फेलोशिप के लिए उत्सुक रहते हैं। इस अवसर पर मैंने डॉ० साहनी का नाम रॉयल सोसायटी के सदस्यों (फेलोज) की सूची में देखा था।

डॉ० बीरबल साहनी का एक महत्वपूर्ण कार्य सिक्के (मुद्रायें) ढालने के साँचों के सम्बन्ध में विख्यात है। एक खुदाई के दौरान अकस्मात उनकी दृष्टि, रोहतक के आस-पास, कुछ ऐसे टूटे-फूटे मिट्टी के ठप्पों की ओर गयी जिनके द्वारा विशेष रूप से यौधेय सिक्कों पर प्रकाश पड़ता है।

श्री मनमोहन व्यास जी, जो म्यूनिसिपेलटी के एक्जीक्यूटिव ऑफिसर थे, के पास भी प्राचीन मुद्राओं का अच्छा संकलन था। हरियाणा में गुरुकुल नरेला के संस्थापक श्री स्वामी उमानन्द जी के पास भी मुद्राओं को तैयार करने और मुद्रा ढालने की सामग्री का अच्छा संग्रह है। कुछ वर्ष पूर्व इसी विषय से सम्बन्धित उनके दो ग्रन्थ भी

प्रकाशित हुए हैं। मुद्रा के सम्बन्ध में काशी के श्री दुर्गाप्रसाद जी का भी अच्छा नाम है, और एक सज्जन श्री पुरुषोत्तम जी भी हैं' जिनकी युवा काल से इस विषय में रुचि रही है।

डॉ० बीरबल साहनी का मुद्रा ढालने के साँचों के सम्बन्ध में 68 पृष्ठों का विस्तृत लेख 'मेम्वायर्स ऑव न्यूमेस्मेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया' के पहले अंक में 1945 में प्रकाशित हुआ था। प्रो० बीरबल साहनी के इस लेख को मैंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "क्वायनेज इन एनसियेण्ट इण्डिया" में उद्धृत किया है। यह लेख सचित्र और अत्यन्त विस्तृत है। बीरबल साहनी जी के दिये हुक इसमें यथारूप सत्तरह चित्र हैं। मेरी पुस्तक में यह अध्याय (लेख) 37 पृष्ठों में हैं और साहनी जी का नामोल्लेख लगभग हर पृष्ठ पर है। मेरे लेख के अन्तिम भाग में जो पैराग्राफ है वह बताता है कि डॉ० बीरबल साहनी की इस खोज की प्रथम घोषणा आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट ने हैदराबाद में अपने वार्षिक अधिवेशन में की थी। यह पैराग्राफ महत्वपूर्ण है अतः इसे मैं अपनी पुस्तक से उद्धृत कर रहा हूँ—

"These moulds belong to the Southern India. K. M. **Ahmad** announced their discovery in the Annual Report of the Archaeological Department of the State of Hyderabad, Deccan (1936-37), and the moulds were also exhibited at the Annual Meeting of the Numismatic Society of India, held at Mysore in 1935. Trial trenches made near the village of Kad Kal (16°12′ N, 76°E) disclosed furnaces, slag and ash-chutes as well as broken pieces of terra-cota moulds and coins of unpublished varieties. Since the legend is in the Nagari script, the coins belong to the 11th to 14th century A. C. Most of the coins were found in ash Chutes along with their moulds. These moulds are comparatively of much recent date."

साहनी साहब के लिखे हुए मेक्वायर में निम्न ग्यारह स्थलों का उल्लेख है, जहाँ से डॉ० साहनी ज अपनी सामग्री संकलित किया—1. ईरान से प्राप्त ईसा से पूर्व तृतीय शती की काँसे का एक साँचा, 2. ईसा से 100 वर्ष पूर्व के रोहतक में प्राप्त साँचे, 3. ईसा से पन्द्रह सौ वर्ष पहले तक्षशिला से प्राप्त साँचे, 4. मथुरा के साँचे जो ईसा के बाद एक या दो शती के हैं, 5. पश्चिमी छत्रप वंश के साँची के कतिपय साँचे जो लगभग ईसा पूर्व 150-388 ई० के हैं, 7. कोण्डा से प्राप्त साँचे (पंचमार्क) आन्ध्र और जत्रप सिक्के, 8. सुनिति साँचे जो द्वितीय शती के कुषाण के बाद के और गुप्त काल के पूर्व के हैं, 9. गुप्तकालीन 500-550 ए० सी० नालन्दा साँचे, जयगुप्त 625-675 ए० सी० साँचे, 10. काशी साँचे, द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल के 375-417 ए० सी० तक और 11. कडकाल साँचे ग्याहरह से चौदह शती ई०।

मेरा पाठकों से आग्रह है कि डॉ० बीरबल साहनी के इस विस्तृत लेख के सम्बन्ध में श्री उपेन्द्र ठाकुर का शोंध पत्र भी अवश्य पढ़ें जो 'जर्नल ऑव न्यूमिसमेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया' में 1961 में छपा हुआ है।

डॉ० बीरबल साहनी का सन् 1949 में हृदयगति अवरोध से सहसा देहावसान हो गया। उनकी आयु उस समय 58 वर्ष की थी। मुझे याद है कि देहावसान का समाचार कानपुर में हम लोगों को प्राप्त हुआ था। साइंस रिसर्च कमेटी की अध्यक्षता के लिए डॉ० के० एस० कृष्णन दिल्ली से आये थे। श्री पद्मपत सिंहानिया के हम लोग मेहमान थे। डॉ० कृष्णन उनकी मृत्यु का समाचार पाकर लखनऊ चले गये थे।

यह है एक छोटी सी कहानी जिसे मैं डॉ० साहनी की जन्मशती के अवसर पर अपने पाठकों को भेंट कर रहा हूँ।

● ●

प्रकाशित हुए हैं। मुद्रा के सम्बन्ध में काशी के श्री दुर्गाप्रसाद जी का भी अच्छा नाम है, और एक सज्जन श्री पुरुषोत्तम जी भी हैं' जिनकी युवा काल से इस विषय में रुचि रही है।

डॉ० बीरबल साहनी का मुद्रा ढालने के साँचों के सम्बन्ध में 68 पृष्ठों का विस्तृत लेख 'मेम्वायर्स ऑव न्यूमेस्मेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया' के पहले अंक में 1945 में प्रकाशित हुआ था। प्रो० बीरबल साहनी के इस लेख को मैंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "क्वायनेज इन एनसियेण्ट इण्डिया" में उद्धृत किया है। यह लेख सचित्र और अत्यन्त विस्तृत है। बीरबल साहनी जी के दिये हुक इसमें यथारूप सत्तरह चित्र हैं। मेरी पुस्तक में यह अध्याय (लेख) 37 पृष्ठों में हैं और साहनी जी का नामोल्लेख लगभग हर पृष्ठ पर है। मेरे लेख के अन्तिम भाग में जो पैराग्राफ है वह बताता है कि डॉ० बीरबल साहनी की इस खोज की प्रथम घोषणा आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट ने हैदराबाद में अपने वार्षिक अधिवेशन में की थी। यह पैराग्राफ महत्वपूर्ण है अतः इसे मैं अपनी पुस्तक से उद्धृत कर रहा हूँ—

"These moulds belong to the Southern India. **K. M. Ahmad** announced their discovery in the Annual Report of the Archaeological Department of the State of Hyderabad, Deccan (1936-37), and the moulds were also exhibited at the Annual Meeting of the Numismatic Society of India, held at Mysore in 1935. Trial trenches made near the village of Kad Kal (16°12′ N, 76°E) disclosed furnaces, slag and ash-chutes as well as broken pieces of terra-cota moulds and coins of unpublished varieties. Since the legend is in the Nagari script, the coins belong to the 11th to 14th century A. C. Most of the coins were found in ash Chutes along with their moulds. These moulds are comparatively of much recent date."

साहनी साहब के लिखे हुए मेक्वायर में निम्न ग्यारह स्थलों का उल्लेख है, जहाँ से डॉ० साहनी ज अपनी सामग्री संकलित किया—1. ईरान से प्राप्त ईसा से पूर्व तृतीय शती की काँसे का एक साँचा, 2. ईसा से 100 वर्ष पूर्व के रोहतक में प्राप्त साँचे, 3. ईसा से पन्द्रह सौ वर्ष पहले तक्षशिला से प्राप्त साँचे, 4. मथुरा के साँचे जो ईसा के बाद एक या दो शती के हैं, 5. पश्चिमी छत्रप वंश के साँची के कतिपय साँचे जो लगभग ईसा पूर्व 150-388 ई० के हैं, 7. कोण्डा से प्राप्त साँचे (पंचमार्क) आन्ध्र और जत्रप सिक्के, 8. सुनिति साँचे जो द्वितीय शती के कुषाण के बाद के और गुप्त काल के पूर्व के हैं, 9. गुप्तकालीन 500-550 ए० सी० नालन्दा साँचे, जयगुप्त 625-675 ए० सी० साँचे, 10. काशी साँचे, द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल के 375-417 ए० सी० तक और 11. कडकाल साँचे ग्याहरह से चौदह शती ई०।

मेरा पाठकों से आग्रह है कि डॉ० बीरबल साहनी के इस विस्तृत लेख के सम्बन्ध में श्री उपेन्द्र ठाकुर का शोध पत्र भी अवश्य पढ़ें जो 'जर्नल ऑव न्यूमिसमेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया' में 1961 में छपा हुआ है।

डॉ० बीरबल साहनी का सन् 1949 में हृदयगति अवरोध से सहसा देहावसान हो गया। उनकी आयु उस समय 58 वर्ष की थी। मुझे याद है कि देहावसान का समाचार कानपुर में हम लोगों को प्राप्त हुआ था। साइंस रिसर्च कमेटी की अध्यक्षता के लिए डॉ० के० एस० कृष्णन दिल्ली से आये थे। श्री पद्मपत सिंहानिया के हम लोग मेहमान थे। डॉ० कृष्णन उनकी मृत्यु का समाचार पाकर लखनऊ चले गये थे।

यह है एक छोटी सी कहानी जिसे मैं डॉ० साहनी की जन्मशती के अवसर पर अपने पाठकों को भेंट कर रहा हूँ।

●●

मेरे संस्मरण

प्रो० बी० एम० जौहरी

[**प्रो० बी० एम० जौहरी** दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष रह चुके हैं। "इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी" ने वर्ष 1970 का "बीरबल साहनी गोल्ड मेडल" देकर उन्हें सम्मानित किया था। वर्तमान लेख उसी अवसर पर दिये गये व्याख्यान का एक अंश है। प्रो० जौहरी का यह व्याख्यान "जर्नल ऑव द इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी" के जिल्द 50, अंक 1, वर्ष 1971, पृष्ठ 20-32 "माय रेमिनिसेन्सेज : एजूकेशन ऑव एन एम्ब्रियालोजिस्ट" शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। "विज्ञान" पत्रिका सभी सम्बन्धित व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रति आभार व्यक्त करती है।

—सम्पादक]

प्रोफेसर बीरबल साहनी से मेरा सर्वप्रथम सम्पर्क 1929 में हुआ जब हमने एक दूसरे को निकट से जाना और यह सम्पर्क 1949 में उनकी दु:खद मृत्यु तक बना रहा।

प्रो० साहनी से मेरा प्रथम परिचय 1931 के मार्च/अप्रैल में हुआ जब प्रो० साहनी आगरा कॉलेज, आगरा में मेरी प्रयोगात्मक परीक्षा लेने आये थे। परीक्षा समाप्त होने के बाद मैं अपने निवास, ग्रैजुएट हॉस्टल, दयालबाग के लिये चल पड़ा। मैंने अभी एक तिहाई मार्ग ही तय किया था कि मैंने अपने कॉलेज के ही एक प्रयोगशाला सहायक राम दयाल को तेजी से अपने निकट आते देखा। जब वे मेरे पास आ गये तो उन्होंने उत्तेजित स्वर में कहा कि **मेहता साहब (प्रो० के० सी० मेहता)** ने मुझे बुलाया है। मैं बहुत घबरा गया और सोचा कि सम्भवत: परीक्षा में मुझसे कुछ भूल हो गई है। मेरे पास कोई विकल्प नहीं था अत: मैं प्रयोगशाला में वापस आ गया। प्रोफेसर मेहता ने मुझे बताया कि प्रोफेसर साहनी मुझसे कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं। बिना किसी भूमिका के प्रोफेसर साहनी ने मुझसे पूछा कि 'स्पाट्स' में से एक का उत्तर मैंने क्यों नहीं लिखा। मैंने उन्हें बताया कि वह 'स्पाट' साइकस (*Cycas*) के के अण्डाशय (Ovary) के लम्बवत काट (longitudinal section) की खराब 'स्लाइड' था। प्रो० साहनी ने मुझसे पूछा कि फिर मैंने क्यों नहीं उत्तर लिखा और क्या मैंने प्रयोगशाला के बाहर आने के बाद किसी से इस विषय में बात-चीत की। मैंने कहा "नहीं"। एक आकर्षक मुस्कान के साथ उन्होंने उत्तर पुस्तिका में उस 'स्पाट' के विषय में लिखने को कहा और मैंने लिख दिया। मुझे बाद में पता लगा कि प्रोफेसर साहनी ने मुझे उसके लिक 'क्रेडिट' (श्रेय) दिया।

प्रोफेसर साहनी से मेरी दूसरी मुलाकात भी 1933 के मार्च/अप्रैल में एम० एस-सी० प्रयोगात्मक परीक्षा में घटी एक घटना से सम्बन्धित है।

मौखिक प्रश्न (Viva-voce) के दौरान उन्होंने मुझसे तम्बाकू के एक सफेद पुष्पी पौधे और गुलाबी पुष्पी पौधे के साथ संकरण (breeding) की तकनीक के विषय में पूछा। मैंने तकनीक को तो विस्तार से बताया किन्तु प्रयोग करके दिखाते समय गड़बड़ा गया क्योंकि मैंने यह प्रयोग पहले कभी भी नहीं किया था।

पुनः प्रोफेसर सहनी से मेरा सम्पर्क लखनऊ में 1936 में हुआ। 'नेचर' ('Nature') के 31 अगस्त, 1935 के अंक में मेरा एक संक्षिप्त नोट 'लाइफ हिस्ट्री ऑव ब्यूटोमॉप्सिस लैन्सियोलेटस कुन्थ' ('Life-history of *Butomopsis lanceolatus*') शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस नोट में मैंने खोखली वर्तिका नलिका (Stylar canal) और अण्डाशय (Ovary) में परागकणों (Pollen grains) की उपस्थिति रिपोर्ट की थी। प्रोफेसर साहनी ने (1936) में मेरे "नेचर" में प्रकाशित नोट के सम्बन्ध में 'करेन्ट साइन्स' ('Current Science') में एक 'रीज्वाइण्डर' (प्रति-प्रत्युत्तर) "पॉलेनग्रेन्स इन द स्टाइलर कैनाल्स एण्ड इन द ओवरी ऑव एन एन्जियोस्पर्म" (Pollen grains in the stylar canals and in the ovary of an angiosperm) शीर्षक से भेजा और अपने रीज्वाइण्डर की प्रति मुझे भी भेजी। मेरे सहयोगी **बहादुर सिंह** ने, जो उस समय लखनऊ में ही काम कर रहे थे, मुझे एक अत्यावश्यक पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरे "नेचर" में प्रकाशित नोट के सम्बन्ध में प्रोफेसर साहनी ने रीज्वाइण्डर भेजा है। मैंने पत्र डॉ० **पी० महेश्वरी** को दिखाया, जिन्होंने मुझे परामर्श दिया कि तुरन्त लखनऊ जाकर अपनी स्लाइडों को प्रोफेसर साहनी को दिखाऊँ।

इसलिये मैने प्रोफेसर साहनी को एक पत्र लिखा कि मैं अपनी स्लाइडों को दिखाने लखनऊ आ रहा हूँ। प्रोफेसर साहनी जीवाश्मों की स्लाइडों के परीक्षण के लिये एक शक्तिशाली (Powerful) 'हैण्डलेन्स' रखते थे और अन्य अधिकांश स्लाइडों के परीक्षण के लिये भी आमतौर से यही तरीका इस्तेमाल करते थे। वे मेरे मात्र एक स्लाइड का लगभग दो घण्टे तक परीक्षण करते रहे जिसमें वर्तिका नलिका और अण्डाशय में पराग कण विद्यमान थे। मध्यान्ह में उन्हें लगा कि उनके पास लोगों के आने-जाने से स्लाइड के परीक्षण में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है और इसलिये वे मुझे अपने घर ले गये जहाँ पुनः 2-3 घण्टे तक वही स्लाइड और 2 अन्य स्लाइडों का परीक्षण करते रहे। वे पूरी तरह सन्तुष्ट हो गये कि **ब्यूटोमॉप्सिस लैन्सियोलेटस** की वर्तिका नलिका और अण्डाशय में इसी जाति (Species) के पराग कण विद्यमान थे। इसे उन्होंने संदेहास्पद माना था और इसी कारण "करेन्ट साइन्स" में अपना नोट भेजा था। इसलिये अपने अपने नोट में जोड़ने के लिये एक 'पोस्ट स्क्रिप्ट' यह लिखकर भेजा कि उन्होंने स्लाइडों का परीक्षण कर लिया है और सन्तुष्ट हैं कि **ब्यूटोमॉप्सिस लैन्सियोलेटस** की वर्तिका नलिका और अण्डाशय में पाये जाने वाले परागकण उसी जाति (स्पीशीज) के परागकण हैं। उन्होंने मुझे भी एक रीज्वाइण्डर लिखकर भेजने की अनुमति प्रदान की ताकि उनके नोट के साथ ही मेरा रीज्वाइण्डर भी प्रकाशित हो।

बी० एस-सी०, एम० एस-सी० और डी० एस-सी० थीसिस की परीक्षाओं में प्रोफेसर साहनी द्वारा जाँचे जाने के कारण मैं प्रोफेसर साहनी के निकट सम्पर्क में आ गया और लगभग 20 वर्षों तक उनसे प्रोत्साहन और अन्तःप्रेरणा प्राप्त करता रहा।

एक दूसरी घटना भी उल्लेखनीय है। जब मुझे आगरा विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त हो गई तो प्रो० साहनी ने मुझे अपने निर्देशन में लखनऊ विश्वविद्यालय ने डी० एस-सी० उपाधि के लिये शोध करने के लिये तैयार किया। उनकी पुरातन आवृतबीजियों (primitive angiosperms) में रुचि थी और चाहते थे कि मैं

कुछेक आवृतबीजियों के जीवाश्मों का अध्ययन करूँ। उस समय मेरे पास कोई नौकरी नहीं थी। मैं लखनऊ प्रोफेसर साहनी के पास चला गया। बात-चीत के दौरान उन्होंने स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) दिलाने की सम्भावना व्यक्त की और मुझे रजिस्ट्रार के पास ले गये। उस समय प्रोफेसर साहनी विज्ञान संकाय के डीन थे। रजिस्ट्रार महोदय ने बताया कि कोई भी छात्रवृत्ति नहीं मिल सकती। प्रोफेसर साहनी स्पष्टवादी थे और उन्होंने मुझे बताया कि चूंकि कुछ समय तक स्कालरशिप मिलना सम्भव नहीं है इसलिये वह स्वयं मेरी आर्थिक सहायता करने को तैयार हैं। यह स्थिति मुझे पसन्द नहीं थी अत: मैं आगरा वापस लौट गया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर मारिस ग्वायर (Maurice Gwyer) ने विदेशी वनस्पति विज्ञानियों से दो सर्वोत्तम भारतीय वनस्पतिविज्ञानियों के नामों का पता कर लिया था। वे दो सर्वश्रेष्ठ वनस्पतिविज्ञानी प्रोफेसर साहनी और प्रोफेसर पी० महेश्वरी थे। पहले प्रोफेसर साहनी के पास दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद का प्रस्ताव भेजा गया जिसे प्रोफेसर साहनी ने स्वीकार कर लिया। प्रोफेसर साहनी के कुछ शोध उपकरण और जीवाश्मों के नमूने दिल्ली पहुँच भी गये। इधर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री (गोविन्द बल्लभ पंत) को प्रोफेसर साहनी का लखनऊ छोड़कर दिल्ली जाना पसन्द नहीं आया। यह बात देश के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू को भी ज्ञात हुई। उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया कि वे प्रोफेसर साहनी से बात करके उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय छोड़कर दिल्ली न जाने के लिये राजी करें। फिर भी प्रोफेसर साहनी ने दिल्ली जाने की योजना बना ली थी और सर मारिस ग्वायर को उन वनस्पतिविज्ञानियों की सूची भेज दी थी, जिन्हें वे दिल्ली विश्वविद्यालय में अपने सहयोगी के रूप में नियुक्त करना चाहेंगे। राजस्थान विश्वविद्यालय की नवम्बर 1947 की बोर्ड ऑव स्टडीज की एक मीटिंग में साहनी साहब ने मुझे बताया था कि वे चाहते हैं कि मैं दिल्ली चला जाऊँ क्योंकि उन्होंने मेरे नाम का प्रस्ताव कुलपति को पहले ही भेज दिया है। अन्ततोगत्वा प्रोफेसर साहनी दिल्ली न आ सके पर मैं दिल्ली पहुँच गया।

●●

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

वे अँग्रेजी में लिखने को लाचार थे

प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार

[प्रस्तुत आलेख **प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार** द्वारा **प्रो० साहनी** के निधन के बाद 13 मार्च 1950 को श्रद्धांजलि स्वरूप लिखा गया था। इसे 'द पेलियोबोटेनिस्ट' जिल्द 1, अंक 1 'साहनी मेमोरियल वाल्यूम' से साभार उद्धृत किया जा रहा है। यह श्रद्धासुमन **प्रोफेसर साहनी** के व्यक्तित्व के एक सर्वथा अछूते पहलू पर प्रकाश डालता है।

—सम्पादक]

स्वर्गीय **बीरबल साहनी** से मैरा पहला मिलना स्वर्गीय **काशीनाथ नारायण दीक्षित** के बँगले पर नई दिल्ली में 15 नवम्वर 1940 की संध्या को हुआ था। दीक्षित मेरे विषय में उनसे पहले कह चुके थे। "तुम दोनों पंजाबी एक-दूसरे को नहीं जानते ?" दीक्षित ने अपने सहज मजाकिये ढँग से हँसते हुये कहा था। हाँ, हम दोनों पंजाबी थे, और पच्छिमी पंजाब के ठीक उन दो कस्बों—भेरा और कमालिया—के, जिन्हें पंजाब के लोग पिछली पौन शताब्दी में अनेक मेधावियों के जन्म-स्थान के रूप में जानते रहे हैं।

साहनी को 1936 में रोहतक के पास खुदाई से मिट्टी के जो हजारों साँचे मिले थे उनका वारीक अध्ययन कर वे प्राचीन भारत में सिक्के ढालने के शिल्प का पुनरुद्धार कर चुके थे। आरम्भ में उस कार्य में उन्हें स्वर्गीय **जायसवाल** जी से सहायता मिली थी। वे चाहते थे इतिहास की दृष्टि से अब कोई उनके तैयार निबन्ध की पाण्डुलिपि को जाँच दे। दीक्षित ने इसी प्रसंग में मेरी चर्चा की थी। उस प्रसंग में आगे जो हुआ उसका उल्लेख साहनी ने अपने निबन्ध में किया है और उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं।

पर हमारा सहयोग एक निबन्ध तक सीमित रहने वाला नहीं था। बीरबल साहनी के मुखड़े पर आदर्श-परायणता और सच्चाई की खोज के लिये निष्ठा ऐसी स्पष्ट लिखी हुई थी कि पहले ही दर्शन में वे मेरी आँखों में समा गई। मुझे प्रतीत हुआ हम दोनों का सहयोग एक और बड़े कार्य के लिये हो सकता है, और जैसे ही मैंने उसकी चर्चा छेड़ी और हमारी दो-चार बातें हुईं कि मैंने देखा साहनी भी उसे अच्छी तरह समझते है और उसमें लगने को जी जान से तैयार हैं।

भारत की जनता तक विश्व के नये ज्ञान की ज्योति पहुँचना हमारे राष्ट्रीय पुनरूत्थान का अत्यन्त महत्व-पूर्ण पहलू है। जनता तक वह ज्योति जनता की अपनी भाषाओं में ही पहुँच सकती है। पर जिन्होंने उस दिशा में समझ-बूझकर कुछ काम किया है वे जानते हैं कि वह काम केवल अनुवाद कर देने का नहीं है। वनस्पतिशास्त्र पर यूरोपी भाषाओं में जो कृतियाँ हैं उनके उदाहरण प्रधानतः और मुख्यतः यूरोपी वनस्पति के हैं, उनकी परिभाषाएँ यूरोपी विचार की परम्परा के अनुसार नियत हुई हैं और यदि कहीं उनमें वैज्ञानिक विचार का क्रमविकास टटोला जाता है तो यूरोप के वनस्पति-विषयक विचार का ही। भारतीय भाषाओं में प्रमाणिक और स्वाभाविक वनस्पतिशास्त्र तैयार हो सके इससे पहले भारतीय वनस्पतियों के विस्तृत और बारीक अध्ययन की, उस अध्ययन के परिणामों के संकलन की, तथा भारतीयों के पुराने वनस्पति-विषयक और उससे सम्बद्ध ज्ञान और विचार के ऐतिहासिक श्रृंखला में संकलन और मंथन की आवश्यकता है।

बीरबल साहनी इस दिशा के पहले अंश में अर्थात् भारतीय वनस्पतियों के अध्ययन में उच्चतम कोटि का कार्य कर रहे थे। बचपन से संस्कृत की शिक्षा न मिलने के कारण वे दूसरे अंश का कार्य स्वयं और अकेले न कर सकते थे, पर कुछ मिनटों की चर्चा में ही मैंने देख लिया कि वे उसके महत्व को पूरी तरह समझते हैं, और यदि कहीं से सहयोग मिले तो उसमें भी तन्मय होकर लगना चाहते हैं। स्वयं किसी भारतीय भाषा में लिखने की शिक्षा बचपन में न पाये होने के कारण वे अँग्रेजी में लिखने को लाचार थे, पर यदि उन्हें अच्छे विद्यार्थी मिलें जो अपनी भाषाओं में वैज्ञानिक विचार व्यक्त कर सकें तो वे उन्हें ठीक राह पर डालकर उनके द्वारा भारतीय जनता तक ज्ञान पहुँचाने को उत्सुक थे। उस दिन की बातचीत में यह ठहरा कि मैं ऐसे विद्यार्थी सहयोगी उनके लिये ढूंढूंगा तथा उन विद्यार्थियों को भारत के पुराने वानस्पति ज्ञान का पता देने और उस ज्ञान की ऐतिहासिक श्रृंखला बनाने में सहायता दूंगा। मैं

उस समय बड़ी आशा और उत्साह से भारतीय-इतिहास-परिषद् का संघटन खड़ा करने में लगा हुआ था। मैं सोचता था उसके खड़े हो जाने पर इन सब दिशाओं में कार्य करना तो हमारा नित्य का धन्धा होगा।

प्राय: दो बरस इसी आशामय संघर्ष में बीत गये। उस बीच जापान का युद्ध छिड़ गया और हमें अपने संघर्ष को एक तरफ रखना पड़ा। 1943 के वसन्त में मुझे अंग्रेजी सरकार का मेहमान बनना पड़ा। तीन बरस उस मेहमानी में निकल गये।

जेल से निकलने के छः मास बाद नवम्बर 1943 में जब मैं फिर साहनी से मिला, तब तक मेरी आशाएँ पूरी तरह टूट चुकीं और देश की वस्तु-स्थिति के प्रति आँखें खुल चुकी थीं। साहनी ने इस बार पूरा एक दिन मुझे अपने साथ रक्खा और अपने पुस्तकालय और परीक्षणशाला का प्रत्येक अंश दिखाया। हाय, वह हमारा अन्तिम मिलन था। साहनी को आश लगी थी कि उनका प्राचीन वनस्पतियों का खोज प्रतिष्ठान खड़ा करने का स्वप्न पूरा होने की राह पर है। मेरे सहयोग से जो उन्हें काम करना था, उसकी सम्भावना पहले से भी अधिक दूर चली गई थी। मेरे चेहरे पर की चिन्तारेखा उन्हें चुभ रही थी, उसका मुझे भी दुःख हुआ। बड़ी खीझ के साथ साहनी ने देश के कुछ नेताओं का नाम लेकर कहा—"वे हिन्दी-हिन्दी करते हैं हमें अंग्रेजीवाला समझते हैं, पर हिन्दी में विज्ञान किस तरह आयेगा उसे कुछ भी नहीं समझते।"

हमारे देश में ऊंची प्रतिभा आज धक्के खाती फिरती है। एक विदेशी भाषा में सोचने की चेष्टा करने से अधिकांश लोग कुछ भी स्पष्ट सोच नहीं सकते। वे वास्तविक प्रतिभा और ढोंग में विवेक नहीं कर पाते। मैंने वामनदास वसु, काशीप्रसाद जायसवाल और गौरीशंकर ओझा जैसे व्यक्तियों को बरसों इसके लिये तरसते देखा है कि ज्ञान के जो नये मार्ग उन्होंने चट्टानें काटकर निकाले थे उन पर अपने पीछे चलने वाले उत्तराधिकारी तैयार कर जाएँ। पर वे अपने अरमान अपने साथ ही ले गये। किसी जीवित देश में ऐसे एक-एक विद्वान् की छाँह में एक-एक विद्यापीठ उठ खड़ा होता। हमारे इतिहास में आज उनकी स्मृति मरुभूमि में खड़े हुए अकेले-अकेले महावृक्ष की सी लगती है। लोगों को ख्याल होगा बीरबल साहनी को तो सब सुविधाएँ प्राप्त थीं। किन्तु भारत की युनिवर्सिटियाँ जिस साँचे में ढली हैं, और उनमें जैसा वातावरण है, उसके भीतर एक विभाग का अध्यक्ष होने पर भी साहनी जैसा वैज्ञानिक क्या अपने इच्छानुसार सर्जन कर सकता था? आज यदि मैं न बताऊँ तो लोगों को पता भी न चले कि अपनी भाषा की सेवा करने की कैसी साध साहनी के दिल में थी। क्यों वे उसे पूरा न कर पाये? और अपनी सारी आयु की कमाई लगाकर जब उन्होंने एक वैज्ञानिक प्रतिष्ठान खड़ा किया, तब उस प्रतिष्ठान को खड़ा करने के सम्बन्ध का सब किस्म का काम उन पर ऐसा पड़ गया कि उसी के बोझ से दबकर वे चल बसे। यदि देश ने साहनी की प्रतिभा का ठीक मूल्य आँका होता तो क्या बोझ उन पर पड़ने दिया जाता? इतिहासकार को कहना होगा कि इस युग के अन्य अनेक प्रतिभाशाली भारतीयों की तरह बीरबल साहनी भी हमारे राष्ट्र की मोहनिद्रा की वेदी पर शहीद हुए।

पर राष्ट्रों की नींव शहीदों के खून पर ही खड़ी होती है। साहनी अपने पीछे जो छोटी-सी शिष्यमण्डली छोड़ गये हैं उसके जिम्मे यह काम है कि जब तक उनका राष्ट्र पूरी तरह चेतकर साहनी के कार्यों को नही सँभाल लेता तब तक उनके आदर्शों की ज्योति को जगाये रखें।

बनारस
13 मार्च 1950

उस समय बड़ी आशा और उत्साह से भारतीय-इतिहास-परिषद् का संघटन खड़ा करने में लगा हुआ था। मैं सोचता था उसके खड़े हो जाने पर इन सब दिशाओं में कार्य करना तो हमारा नित्य का धन्धा होगा।

प्राय: दो बरस इसी आशामय संघर्ष में बीत गये। उस बीच जापान का युद्ध छिड़ गया और हमें अपने संघर्ष को एक तरफ रखना पड़ा। 1943 के बसन्त में मुझे अंग्रेजी सरकार का मेहमान बनना पड़ा। तीन बरस उस मेहमानी में निकल गये।

जेल से निकलने के छ: मास बाद नवम्बर 1943 में जब मैं फिर साहनी से मिला, तब तक मेरी आशाएँ पूरी तरह टूट चुकीं और देश की वस्तु-स्थिति के प्रति आँखें खुल चुकी थीं। साहनी ने इस बार पूरा एक दिन मुझे अपने साथ रक्खा और अपने पुस्तकालय और परीक्षणशाला का प्रत्येक अंश दिखाया। हाय, वह हमारा अन्तिम मिलन था। साहनी को आश लगी थी कि उनका प्राचीन वनस्पतियों का खोज प्रतिष्ठान खड़ा करने का स्वप्न पूरा होने की राह पर है। मेरे सहयोग से जो उन्हें काम करना था, उसकी सम्भावना पहले से भी अधिक दूर चली गई थी। मेरे चेहरे पर की चिन्तारेखा उन्हें चुभ रही थी, उसका मुझे भी दु:ख हुआ। बड़ी खीझ के साथ साहनी ने देश के कुछ नेताओं का नाम लेकर कहा—"वे हिन्दी-हिन्दी करते हैं हमें अंग्रेजीवाला समझते हैं, पर हिन्दी में विज्ञान किस तरह आयेगा उसे कुछ भी नहीं समझते।"

हमारे देश में ऊंची प्रतिभा आज धक्के खाती फिरती है। एक विदेशी भाषा में सोचने की चेष्टा करने से अधिकांश लोग कुछ भी स्पष्ट सोच नहीं सकते, वे वास्तविक प्रतिभा और ढोंग में विवेक नहीं कर पाते। मैंने **वामनदास** वसु, **काशीप्रसाद जायसवाल** और **गौरीशंकर ओझा** जैसे व्यक्तियों को बरसों इसके लिये तरसते देखा है कि ज्ञान के जो नये मार्ग उन्होंने चट्टानें काटकर निकाले थे उन पर अपने पीछे चलने वाले उत्तराधिकारी तैयार कर जाएँ। पर वे अपने अरमान अपने साथ ही ले गये। किसी जीवित देश में ऐसे एक-एक विद्वान् की छाँह में एक-एक विद्यापीठ उठ खड़ा होता। हमारे इतिहास में आज उनकी स्मृति मरुभूमि में खड़े हुए अकेले-अकेले महावृक्ष की सी लगती है। लोगों को ख्याल होगा बीरबल साहनी को तो सब सुविधाएँ प्राप्त थीं। किन्तु भारत की युनिवर्सिटियाँ जिस साँचे में ढली हैं, और उनमें जैसा वातावरण है, उसके रहते एक विभाग का अध्यक्ष होने पर भी साहनी जैसा वैज्ञानिक क्या अपने इच्छानुसार सर्जन कर सकता था? आज यदि मैं न बताऊँ तो लोगों को पता भी न चले कि अपनी भाषा की सेवा करने की कैसी साध साहनी के दिल में थी। क्यों वे उसे पूरा न कर पाये? और अपनी सारी आयु की कमाई लगाकर जब उन्होंने एक वैज्ञानिक प्रतिष्ठान खड़ा किया, तब उस प्रतिष्ठान को खड़ा करने के सम्बन्ध का सब किस्म का काम उन पर ऐसा पड़ गया कि उसी के बोझ से दबकर वे चल बसे। यदि देश ने साहनी की प्रतिभा का ठीक मूल्य आँका होता तो क्या बोझ उन पर पड़ने दिया जाता? इतिहासकार को कहना होगा कि इस युग के अन्य अनेक प्रतिभाशाली भारतीयों की तरह बीरबल साहनी भी हमारे राष्ट्र की मोहनिद्रा की वेदी पर शहीद हुए।

पर राष्ट्रों की नींव शहीदों के खून पर ही खड़ी होती है। साहनी अपने पीछे जो छोटी-सी शिष्यमण्डली छोड़ गये हैं उसके जिम्मे यह काम हैं कि जब तक उनका राष्ट्र पूरी तरह चेतकर साहनी के कार्य को नही सँभाल लेता तब तक उनके आदर्शों की ज्योति को जगाये रखें।

बनारस
13 मार्च 1950

●●

भारत में पादप जीवाश्म विज्ञान

डॉ० एम० एस० रान्धावा

[प्रस्तुत आलेख बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पेलियोबॉटनी के तत्कालीन निदेशक **डॉ० के० आर० सुरंगे**, जो **प्रोफेसर साहनी** के शिष्य रहे हैं, की पुस्तक "इण्डियन फॉसिल टेरिडोफाइट्स" (बोटेनिकल मोनोग्राफ नं० 4) से लिया है। यह पुस्तक 'कौंसिल ऑव साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च', नई दिल्ली द्वारा 1966 में प्रकाशित की गई थी। तब से अब तक पादप जीवाश्म विज्ञान में और अनेक शोध कार्य हुए हैं। परिषद् सभी सम्बन्धित व्यक्तियों और संस्थाओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

—सम्पादक]

भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के इतिहास का प्रारम्भ 1928 से माना जा सकता है जब **ए० ब्रांगनियर्ट** (A. Brongniart) नामक वैज्ञानिक ने कुछ भारतीय जीवाश्म पादपों का वर्णन अपने 'प्रोड्रोम' (Prodrome) और 'हिस्टोरी डेस वेजीटाक्स फॉसिल्स' (*Histarie des vegetaux fossils*) में किया। उसके बाद उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय जीवाश्म पादपों से सम्बन्धित जो भी अनुसन्धान कार्य हुआ है वह, भारत के विभिन्न भागों से 'भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण' (Geological Survey of India) से सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा संकलित किये गये जीवाश्म नमूनों के आधार पर किया गया है। इस प्रकार का सर्वप्रथम प्रकाशन 'भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण' के वर्ष 1848-49 के लिये मैकक्लीलैण्ड (Mc Clelland) द्वारा प्रकाशित वह रिपोर्ट है, जिसमें कुछ भारतीय जीवाश्म पादपों के वर्णन और चित्र शामिल हैं।

वर्ष 1886 तक तो **ओ० फीस्टमाण्टेल** (O. Feistmontel) द्वारा "फॉसिल फ्लोरा ऑव द गोंगवाना सिस्टम" (Fossil Flora of the Gondwana System) नामक ग्रन्थ (4 जिल्दों में) प्रकाशित हुआ। यही नहीं, पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में गोंडवाना पादपों के बाद के जीवाश्म पादपों से सम्बन्धित बहुत सारे उल्लेख मिलते हैं। किन्तु इस दौरान हुए कार्यों की एक विशेषता यह है कि ये कार्य भूवैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादित हुए थे और इनसे अवसादी शिलाओं के स्तरविन्यास पर प्रकाश पड़ता है।

इस समय तक पुरावनस्पतिकी (Palaeobotany) की दृष्टि से भारतीय जीवाश्म पादपों के नमूनों का अध्ययन नहीं हो रहा था। वास्तव में पुरावनस्पतिकी की दृष्टि से जीवाश्म पादपों का अध्ययन, कि इन जीवाश्म नमूनों की संरचना किस प्रकार पादप जगत् के विभिन्न समूहों के पादपों के विकास (Evolution) पर प्रकाश डालती हैं, का श्रेय निश्चित रूप मे प्रोफेसर बीरबल साहनी को जाता है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्रसिद्ध पादप जीवाश्म विज्ञानी प्रो० सीवर्ड के निर्देशन में कार्य करने के बाद डॉ० साहनी 1919 में भारत लौटे और अत्यधिक उत्साह के साथ जीवाश्म पादपों पर शोधकार्य में जुट गये। उन्होंने बहुत से नये जीवाश्म पादपों की खोज की, उनके चित्र एवं विवरण तैयार किये और पुरावनस्पतिकी तथा भूवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किया।

वर्तमान शती के चौथे दशक तक तो, प्रोफेसर बीरबल साहनी के कुशल निर्देशन में, पुरावनस्पतिकी के क्षेत्र में हुए शोधों के फलस्वरूप भारत की एक अलग पहचान बन गई थी। भारत में जीवाश्म पादपों पर कार्य करने वालों की एक विशिष्ट टोली बन गई। 1946 में प्रोफेसर बीरबल साहनी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री साहनी के सहयोग से 'पेलियोबोटेनिकल सोसायटी' (Palaeobotanical Society) का गठन किया। यही नहीं, साहनी दम्पत्ति ने अपनी व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति, पुस्तकों, शोधपत्रों और जीवाश्म नमूनों का विशाल संग्रह इस सोसायटी को दान कर दिया।

लखनऊ में स्थित पुरावनस्पतिकी संस्थान (Institute of Palaeobotany), जो अब 'बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पैलियोबॉटनी कहलाता है, भारत में पुरावनस्पतिकी अनुसन्धान का मुख्य केन्द्र है।

कार्बोनीफेरस (Carboniferous) काल से लेकर प्लीस्टोसीन (Pleistocene) काल के जीवाश्म पादपों का इस संस्थान में संग्रह है। इन जीवाश्मों को देश के विभिन्न भागों से एकत्र किया गया है। इन जीवाश्म पादपों के अध्ययन से वनस्पतियों के विभिन्न समूहों की तुलनात्मक आकारिकी पर प्रकाश पड़ा है और विकासात्मक इतिहास उजागर हुआ है। पादपों के सूक्ष्मजीवाश्मों (Plant microfossils) के अध्ययन के अर्जित ज्ञान का उपयोग भूवैज्ञानिक काल (Geological Time) का निर्धारण और आसाम के तृतीय महाकल्प शैलों (Tertiary beds) में तेल वाहक संस्तरों की खोज में किया गया है। भारतीय कोयले, विशेष रूप से कोयले के संस्तर, का पुरावनस्पतिकी की दृष्टि से अध्ययन किया जा रहा है। जीवाश्म पेलीनॉलोजी (Fossil Palynology) के क्षेत्र में किया जा रहा अनुसन्धान भी प्रगति पर है।

●●

नई दिल्ली
26 अगस्त, 1964

—प्रस्तुति : राजेश कुमार केसरी
विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

भारतीय भूगर्भ शास्त्र को प्रो० साहनी की देन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रो० साहनी मूलतः वनस्पतिशास्त्री थे, किन्तु उनमें वनस्पतिशास्त्री के साथ ही भूगर्भशास्त्र का दुर्लभ संयोग था। इसे मणि-कांचन सुयोग ही कहा जायगा। उन्होंने भूगर्भशास्त्रीय खोजों और अध्यापन के क्षेत्र में जो रुचि दिखलायी उसी का परिणाम था कि अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगर्भशास्त्र का प्रवेश सम्भव हो सका। जब 1943 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय में भूगर्भ शास्त्र का प्रवर्तन हुआ तो प्रो० साहनी भूगर्भ शास्त्र विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। उनके व्याख्यान अत्यन्त प्रेरणादायक होते थे और वे प्रतिभाशाली युवकों को प्रशिक्षित करने में कोई कसर नहीं उठा रखते थे। यही कारण था कि उनका विभाग देश का अग्रणी केन्द्र बन गया था। उनका सम्पर्क एवं उनकी मैत्री विश्वभर के प्रमुख भूगर्भशास्त्रियों से थी। शायद ही कोई ऐसा विदेशी भूगर्भशास्त्री रहा हो जो भारत आने पर उनसे भेंट करने न गया हो। सौभाग्यवश उनकी अर्धांगिनी **श्रीमती सावित्री साहनी** उनकी भूगर्भ विषयक यात्राओं में उनके साथ रहती थीं। प्रो० साहनी अपने पीछे जो वैज्ञानिक पत्र-व्यवहार छोड़ गये हैं उससे समसामयिक भूगर्भशास्त्रीय विचारधाराओं का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

बात यह हुई कि सारे भारतीय भूगर्भशास्त्री **श्री डब्ल्यू० टी० ब्लैनफोर्ड** (1876) के इस मत के पोषक थे कि फॉसिल पादपों के आधार पर जो भी साक्ष्य हों उन्हें भारतीय गोंडवाना के अध्ययन के समय सतर्कतापूर्वक ग्रहण किया जाय। सौभाग्यवश प्रो० साहनी ने जो कार्य किया था उसी के आधार पर 1920 ई० में **सीवर्ड** के सहयोग से पुस्तक लिखी जिसमें भारतीय गोंडवाना पादपों के विषय में परिवर्धित विचार प्रकट हुए थे। वस्तुतः भारतीय भूगर्भशास्त्र तथा पुरावनस्पति विज्ञान (पेलियोबॉटनी) के इतिहास में यह पहली महत्वपूर्ण घटना थी। इसके फलस्वरूप भूगर्भशास्त्र के अध्ययन में पादप फॉसिलों (जीवाश्मों) को अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा।

1926 ई० में उन्होंने भूगर्भशास्त्रियों को सम्बोधित करते हुए यह विचार व्यक्त किया था कि फॉसिल पौदे विभिन्न पादप समूहों के विकास क्रम को बतलाने वाले हैं, जिससे वनस्पति विज्ञान भूगर्भशास्त्र का ऋणी है। उन्होंने पुरावनस्पति सम्बन्धी जो शोध कार्य प्रारम्भ किया वह न केवल स्तरीकरण (Stratigraphical) समस्या का समाधान प्रस्तुत करने वाला था अपितु उससे पुरा-भूगोल, भूतकालीन जलवायु, यहाँ तक कि पृथ्वी की गतियों के विषय में प्रकाश डालने वाला था। उनके शोध कार्य से आर्थिक भूगर्भशास्त्र को भी योग मिला।

भूगर्भशास्त्र विषयक तीन समस्याएँ समाधान चाह रही थीं—गोंडवाना लैंड का भूगर्भ, दकन ट्रैप तथा पंजाब सैलाइन सिरीज (लवण श्रेणी)। गोंडवाना निर्मिति (formations) के वर्गीकरण और आयु को लेकर काफी ऊहापोह रहा है। डॉ० साहनी ने राजमहल की वनस्पति (flora) के विशद अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध किया कि यह वनस्पति जुरैसिक युग की है, क्रेटैसियस की नहीं है। सैलाइन सिरीज की आयु को लेकर प्रो० साहनी ने 1943 में

प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

कार्य शुरू किया। वे सूक्ष्म फॉसिलों के साक्ष्य पर इस समस्या का समाधान करने में सफल रहे। प्रो० साहनी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में सूक्ष्म पुरावनस्पति आयु (Micropalaeontology) में रुचि लेने लगे थे। इसका महत्व तेल की खोज में है। शैलों के बीच फॉसिलों से आयु की सूचना मिल सकती है।

उनका यह विश्वास था कि प्रयोगशाला तक सीमित न रहकर पुरावनस्पति-विज्ञानी को उन स्थानों की यात्रा करनी चाहिये जहाँ फॉसिल मिलते हैं। यही कारण था कि वे अपनी मृत्यु के कुछ सप्ताह पूर्व भी राजमहल के दौरे पर गये थे। वे अपने साथ एक हथौड़ी और एक नोटबुक रखते थे। जो लोग उनके साथ इन दौरों में रहते थे वे उनकी स्मृतियों को आज भी संजोये हुए हैं। **डॉ० डी० एन० वाडिया** का अभिमत है कि यद्यपि अब काल निर्धारण की अनेक उत्तम विधियाँ ज्ञात हैं तो भी सूक्ष्म फॉसिल विधि आज भी अस्पष्ट शैल निर्मितियों के काल-निर्धारण में महत्व रखती है।

ऐसे बहुआयामी प्रतिभा वाले वनस्पतिविज्ञानी को उनकी सौवीं वर्षगाँठ पर अनेकशः नमन।

●●

भारतीय मुद्राशास्त्र को डॉ० साहनी की देन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

डॉ० बीरबल साहनी अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे तो मूलतः वनस्पतिशास्त्री थे, किन्तु उनके बचपन के संस्कारों ने उन्हें उन सारे क्षेत्रों में कार्य करने के लिये प्रेरित किया जिनमें प्रकृति निरीक्षण के साथ-साथ वैज्ञानिक प्रवृत्ति की आवश्यकता थी। **डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल** ने लिखा है कि डॉ० साहनी ने हाई स्कूल में संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। भारत के प्राचीन इतिहास के प्रति उनमें अनुराग था। उन्होंने पुराजीवाश्म सम्बन्धी अपने समस्त ज्ञान का उपयोग खोकराकोट से प्राप्त सिक्कों के विशाल संग्रह के अध्ययन में किया। एक पुरावनस्पतिवेत्ता ने मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश करने का कैसे दुस्साहस किया, इसकी अलग से कहानी है।

1936 ई० में रोहतक के निकट खोकराकोट नामक स्थान में मिट्टी के बने कई हजार सिक्कों के साँचे (moulds) प्राप्त हुए। डॉ० साहनी ने इनकी प्राप्ति की सूचना "करेंट साइंस" नामक शोधपत्रिका के मई 1936 अंक में प्रकाशित कर दी। तत्पश्चात् वे सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता **डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल** से मिले। उन्होंने डॉ० साहनी को सलाह दी कि वे प्राचीन भारत में सिक्का ढालने के उपकरण का अध्ययन जारी रखें। डॉ० साहनी को इससे प्रोत्साहन मिला तो भी उन्होंने विदेशी विशेषज्ञों से भी सम्पर्क किया। इसी बीच डॉ० जायसवाल ने उदयपुर में आयोजित मुद्राशास्त्र समिति की नवम्बर 1936 की बैठक में अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० साहनी की खोज का

अवकाशप्राप्त निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय-211002

उल्लेख कर दिया। फिर तो डॉ० साहनी अपने साथ पुरातत्व विभाग के निदेशक स्वर्गीय रायबहादुर के० एन० दीक्षित को मार्च 17, 1937 को खोकरा कोट ढींह दिखाने ले गये।

डॉ० साहनी को खोज का ऐतिहासिक महत्व डॉ० जायसवाल द्वारा उपर्युक्त सिक्कों में अंकित ब्राह्मीलपि के पढ़े जाने पर स्पष्ट हो सका। उनमें सिक्कों में बहुधायक यौधेय अंकित था। यद्यपि यौधेय सिक्के एक सौ वर्ष पूर्व से ज्ञात थे, किन्तु यह पहला अवसर था जब किसी टकसाल-स्थल को सही-सही पहचाना गया। यह स्थल था रोहतक का पड़ोस जो बहुधाण्यक के यौधेय गणराज्य में था। इससे 'महाभारत' में वर्णित बहुधाण्यक के यौधेयों की पुरातात्विक पुष्टि पहली बार सम्भव हो सकी। पुरातत्वविदों तथा इतिहासकारों ने इस खोज का खुले दिल से स्वागत किया इस तरह पहली बार भारतीय इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में इस तथ्य को स्थान मिला, जिसका श्रेय डॉ० साहनी को है।

कहते हैं कि डॉ० साहनी ने जिज्ञासु की तरह ब्राह्मीलिपि के पढ़ने में भी दक्षता प्राप्त की थी और फिर वे जुट गये यह पता लगाने में कि सिक्कों के साँचे किस प्रविधि से बने होंगे और सिक्कों को किस तरह ढाला गया होगा। पुरातत्वविदों के लिये यह सदा के लिये गुत्थी बनी रह जाती यदि डॉ० साहनी ने अपने पुरानवस्पति ज्ञान का सदुपयोग इसे सुलझाने में न किया होता।

डॉ० साहनी ने तुरन्त पता लगाना शुरू कर दिया कि भारत में किन-किन अन्य खुदाई स्थलों में ऐसे साँचे मिले हैं। उन्हें ज्ञात हुआ कि कम से कम दस स्थल ऐसे हैं किन्तु प्राप्त सामग्री अत्यन्त उपेक्षित अवस्था में है। सम्बन्धित साहित्य की खोज में वे 1938 की गर्मियों में विदेश भी गये। वियना में वे प्रो० पिंक से मिले, जिन्होंने रोम के सिक्कों की ढलाई के विषय में जानकारी दी। बाद में डॉ० साहनी ने ब्रिटिश द्वीपसमूह तथा यूरप और चीन से भी सम्बद्ध साहित्य प्राप्त किया। उन्होंने अपने देश के जिन ग्यारह स्थानों की सामग्री का उपयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया उसका उल्लेख उन्होने 1945 में प्रकाशित अपने एक लेख में किया है। ये हैं—

1. मध्य प्रदेश के एरण स्थान से, जो कि सागर जनपद में है, प्राप्त कांस्य का ठप्पा (तीसरी शती ई० पू०)।
2. रोहतक से प्राप्त साँचे (100 ई० पू०)।
3. तक्षशिला से प्राप्त साँचे (15 ई० पू०)।
4. मथुरा से प्राप्त साँचे (100-200 ई०)।
5. अत्रन्जीखेड़ा से प्राप्त साँचे (कुशाण काल 200 ई०) यह स्थान एटा जिले में है।
6. साँची, जो पश्चिमी क्षत्रप वंश से सम्बद्ध स्थान है, से प्राप्त साँचे (150-388 ई०)।
7. कोंडापुर (हैदराबाद रियासत) से प्राप्त पंचमार्क वाले सिक्के।
8. लुधियाना जिले के सुनेत से प्राप्त साँचे (300 ई०)।

9. काशी से प्राप्त साँचे जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल के थे।

10. नालन्दा से प्राप्त साँचे जो नरसिंह गुप्त तथा जय गुप्त के समय के थे।

11. कडकल (हैदराबाद रियासत) से प्राप्त साँचे (1100-1400 ई०)।

इस तरह डॉ० साहनी से 300 ई० पूर्व से लेकर 1200 ई० तक के 1500 वर्षों के दीर्घ अन्तराल के साँचों का अध्ययन किया। ये साँचे विस्तृत भूभाग से तक्षशिला से हैदराबाद तक के थे। डॉ० साहनी के अध्ययन से उन असंख्य भारतीय सिक्कों के ढालने की प्रविधि का उद्घाटन सम्भव हो सका जो अपनी विविधता, अपने सौन्दर्य और राष्ट्रीय इतिहास बतलाने में विख्यात हैं। इससे भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में अभूतपूर्व योगदान मिला। डां० साहनी की केवल इस एक खोज के लिये भारतीय इतिहास उनका चिरऋणी रहेगा।

डॉ० साहनी ने इन साँचों के अध्ययन के लिए पुरावनस्पति विज्ञान में प्रयुक्त सूक्ष्म विधियों का प्रयोग किया। उन्होंने सारे साँचों की ठीक से माप-जोख की, वैसे ही मिट्टी के साँचे बनाये और उन्हें पकाकर यह जानने का प्रयास किया कि कितने ताप पर पुराने साँचे तैयार हुए होंगे। उन्होंने पुराने साँचों की मिट्टी तथा सिक्कों का सूक्ष्मदर्शी-निरीक्षण भी किया। तत्पश्चात् उन्होंने सबों के आरेख भी तैयार कराये। अपने मित्र डॉ० भाभा के सुझाव पर कुछ साँचों का एक्स-रे भी लिया कि कहीं कुछ सिक्के साँचों के भीतर तो नहीं पड़े रह गये। अन्त में डॉ० साहनी ने रोहतक सिक्का साँचे का प्रकल्पित चित्र भी दिया—इसके अनुसार साँचे में कई चकतियाँ एक के ऊपर एक रखकर ऊपर से चिकनी मिट्टी से लेप दी गई। ऊपरी सिरे पर कीप जैसा मुख छोड़ दिया गया था जिससे गलाई गई धातु डाली जा सके। कीप का सिरा नीचे तक गया था। इससे इधर-उधर शाखाएँ फूटी थीं, जिनसे धातु सिक्कों के गड्ढों (साकेटों) में पहुँच सके। सचमुच बड़ी ही पेचीदी क्रिया से सिक्के ढाले जाते थे। एक वैज्ञानिक के हाथों से मुद्राशास्त्र को वैज्ञानिक आधार प्रदान हुआ। उसके बाद कई विश्वविद्यालयों में प्राचीन उत्खननों से प्राप्त सिक्कों के आधार पर शोध कार्य हुए हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभाग में कार्यरत **डॉ० सत्यप्रकाश (अब स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती)** ने कौशाम्बी के सिक्कों पर कुछ महत्वपूर्ण रासायनिक आँकड़े (1962 से 1982 तक) प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने देश-विदेश में मुद्रा विषयक शोधों से सम्बद्ध पुस्तक भी (1986) प्रकाशित की (Coinage in Ancient India), जिसमें उन्होंने डॉ० बीरबल साहनी के इस कार्य का विस्तार से वर्णन किया है। डॉ० साहनी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर आगे भी शोध होता रहेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

"क्रियासिद्धिः सत्वे भवति मतां नोपकरणे"

●●

प्रो० साहनी के जीवन से कुछ पृष्ठ

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

प्रो० बीरबल साहनी और देश के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू में अनेक समानतायें दिखती हैं। दोनों का जन्म 14 नवम्बर [illegible] को हुआ था। दोनों का ही अचकन, चूड़ीदार पैजामा, गाँधी टोपी प्रिय पहनावा था। दोनों ही आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, कुशल वक्ता, और प्रभावशाली लेखक थे। युवावस्था में ही देश-विदेश में ख्याति अर्जित करने के सम्बन्ध में भी दोनों समान रूप से सौभाग्यशाली थे। दोनों की रुचि विज्ञान में थी और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने का अवसर भी दोनों व्यक्तियों को मिला। किन्तु जहाँ पं० नेहरू राजनीति के पुरोधा थे वहीं स्वदेशी आन्दोलन और कांग्रेस पार्टी में गहरी आस्था होने के बाबजूद प्रो० साहनी ने विज्ञान के माध्यम से देश-सेवा का व्रत लिया।

उनके पिता का लाहौर का घर पं० मोतीलाल नेहरू के घर—स्वराज्य भवन—की भाँति पंजाब में राज-नीतिक गतिविधियों का केन्द्र था और पं० मोतीलाल नेहरू, श्री गोखले, श्री श्री निवास शास्त्री, श्रीमती सरोजनी नायडू, महामना पं० मदन मोहन मालवीय जैसे कांग्रेस के सम्मानित नेता उनके पिता के मेहमान हुआ करते थे। पं० जवाहर लाल नेहरू और श्री श्री प्रकाश जी से तो उनकी व्यक्तिगत मित्रता थी।

प्रो० साहनी के मित्र श्री श्री प्रकाश जी ने एक बड़ी मार्मिक घटना का उल्लेख किया है। किसी बात पर प्रो० साहनी की डॉ० गणेश प्रसाद से कुछ अनबन हो गई और प्रो० साहनी ने काशी विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। बाद में जब प्रो० साहनी लन्दन की रायल सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए तो श्री श्री प्रकाश जी ने उन्हें बधाई देते हुए इस बात का उल्लेख कर दिया कि यदि डॉ० गणेश प्रसाद जीवित होते तो उन्हें अपनी गलती का एहसास होता। इसके उत्तर में प्रो० साहनी ने डॉ० गणेश प्रसाद के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा कि उस अप्रिय-घटना को भूल जाना ही श्रेयस्कर है। कितना विशाल था उनका हृदय ! गंगाजल की भाँति निर्मल और पवित्र।

प्रोफेसर साहनी अनेक दृष्टियों से भाग्यशाली रहे। लाहौर कॉलेज में उन्हें रायबहादुर डॉ० शिवराम कश्यप, कैम्ब्रिज में विख्यात पुरावनस्पतिविज्ञानी डॉ० ए० सी० सीवर्ड जैसे गुरू मिले। डॉ० कश्यप को भारतीय वनस्पति विज्ञान का जनक कहते हैं। विख्यात सिने अभिनेत्री श्रीमती कामिनी कौशल प्रो० कश्यप की पुत्री हैं। प्रो० सीवर्ड से तो साहनी साहब इतने प्रभावित हुए कि उनके निर्देशन में शोध कार्य भी किया और आगे चलकर विश्व-विख्यात पुरावनस्पतिविज्ञानी बने। एकबार जब भारत से जियोलोजिकल सर्वे ने अध्ययन के लिए कुछ पादप जीवाश्मों के नमूने डॉ० सीवर्ड को भेजे तो उन्होंने यह कहकर वापस कर दिया कि इन पर अध्ययन का पहला हक उनके शिष्य प्रो० साहनी का है।

जीवित वनस्पतियों के अध्ययन की रुचि डॉ० साहनी को बचपन से थी। अनेक प्रकार के पौधों और केकड़े जैसे जीवों की खोज में वे प्रायः दुर्गम पहाड़ियों और जंगलों में जाया करते थे। एक बार की घटना तो बड़ी ही विचित्र है। प्रो० साहनी के छोटे भाई डॉ० एम० आर० साहनी बताते हैं—

"1905 में हमारा परिवार गर्मियों में मरी (Murry) चला आया था। मैं मात्र 6 वर्ष का था और भाई बीरबल मुझसे 8 वर्ष बड़े थे। एक दिन सुबह के समय बीरबल मुझे और मुझसे दो वर्ष बड़ी एक बहन को लेकर चल पड़े। साथ में टीन के एक या दो खाली डिब्बे थे। हमें पता नहीं था कि हम कहाँ जा रहे हैं। बिना किसी को बताये चुपचाप हम शहर के उत्तर दिशा की ओर जंगलों में पहुँच गये। जंगल की ओर हम तब तक आगे बढ़ते गये जब तक एक नाला नहीं आ गया। ढलवें रास्ते की यह यात्रा विशेष कष्टकर नहीं थी गो कि ऐसे कई अवसर आये जब ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार करने में बीरबल ने हमारी सहायता की। आगे बढ़ने के आवेश में हमें समय का ध्यान तब हुआ जब भूख से पेट में चूहे कूदने लगे। किन्तु इस समय तक शाम घिर आई थी।

भूखे-प्यासे हम घर के लिए वापस मुड़े। अब यात्रा चढ़ान की ओर थी और हम बेहद थक गये थे। बीरबल बारी-बारी से कभी मुझे और कभी बहन को खराब रास्ता पार करने में सहायता करते रहे। स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों की सहायता करने का गुण उनमें जीवन पर्यन्त रहा।

प्रो० बीरबल साहनी चिंतन की मुद्रा में

अब रात हो गई। हम देर रात से घर पहुँचे। हम थके थे, भूखे थे, हमारे पैरों से खून और आँखों से आँसू बह रहे थे। ऊपर से पिताजी की डाट खाने का भय अलग से सता रहा था। किन्तु भाई पूरी तरह संयत थे।

क्रोधित पिताजी के यह पूछने पर कि अब तक वे कहाँ थे और बिना आज्ञा लिए अपने से छोटे भाई-बहन को भी कहाँ ले गये थे, भाई का सहज उत्तर था—'केकड़े पकड़ने'। इस उत्तर को सुनकर हमें लगा हम अब पिटने ही वाले हैं किन्तु भाई का उतर सुनकर पिताजी शांत हो गये। हमारे पिताजी स्वयं खोजी प्रकृति के वैज्ञानिक थे।"

जंगलों, पहाड़ियों और दुर्गम स्थानों में पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं और जीवाश्मों की खोज की बचपन की यह आदत प्रो० बीरबल में अन्त तक बनी रही।

प्रो० साहनी का सपना था भारत में एक आले दर्जे के पुरावनस्पति संस्थान की स्थापना। कोई भी प्रलोभन उन्हें अपने ध्येय से विचलित न कर सका। एक बार केन्द्र सरकार के तत्कालीन शिक्षा मन्त्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने प्रो० साहनी को शिक्षा मंत्रालय में सचिव पद देने की पेशकश की, किन्तु प्रो० साहनी ने यह कहते हुए विनम्रतापूर्वक खेद व्यक्त कर दिया कि उन्होंने अपना जीवन पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट को समर्पित कर दिया है। तत्कालीन शिक्षा मन्त्री ने यह स्वीकार किया है कि इस अस्वीकृति से उनके हृदय में प्रो० साहनी के प्रति आदर और बढ़ गया।

शिक्षक के रूप में प्रो० साहनी अद्वितीय थे। उनका निश्चित मत था कि स्नातकोत्तर कक्षाओं की अपेक्षा स्नातक कक्षाओं में वरिष्ठ अध्यापकों को ही पढ़ाना चाहिए। शोध कार्यों में अतिव्यस्त रहते के बावजूद वे स्नातक कक्षायें भी लेते थे। कक्षा के बाहर तो अपने विद्यार्थियों से वे पिता की तरह व्यवहार करते थे। यदि उनका कोई विद्यार्थी बीमार पड़ जाता था तो वे प्रायः हर शाम उसे देखने जाते थे। उनके एक शिष्य डॉ० के० जैकब बताते हैं कि जब वे बीमार पड़े थे और अस्पताल में भर्ती थे तो उनके गुरु प्रो० साहनी और श्रीमती साहनी प्रतिदिन अस्पताल उन्हें देखने जाते थे। बाद में साहनी दम्पति उन्हें घर लाये और सेवा-सुश्रूषा की।

डॉ० जैकब आगे बताते हैं कि यह उन दिनों की बात है जब डॉक्टरेट की उपाधि के बावजूद उन्हें नौकरी नहीं मिल रही थी और वे निराशा के दौर से गुजर रहे थे। प्रो० साहनी से डॉ० जैकब की मुलाकात भारतीय विज्ञान सम्मेलन में हुई और उन्होंने अँग्रेजी कवि ड्राइडेन (Dryden) के शब्दों को उद्धृत करते हुए प्रो० साहनी से कहा—

'When I consider life, its all a cheat. Yet fool'd with hope men favour the deceit.'

[जब मैं जीवन के बारे में विचार करता हूँ, तो सब धोखा मालूम पड़ता है।

इतने पर भी आशा के भुलावे में पड़े मानव उसी वंचकता का पक्ष लेते हैं।]

मैं आश्चर्यचकित रह गया जब मुझे समझाते हुए उन्होंने ड्राइडेन की ही आगे की पंक्तियाँ उद्धृत कीं—

'Trust on, think, tomarrow will repay.'

[विश्वास करो, सोचो, आने वाला दिन प्रतिदान लायेगा।]

आगे बोलते हुए उन्होंने मेरा ध्यान एक चीनी कहावत की ओर आकृष्ट किया—

'It is better to light a candle than to curse the darkness.'

[अँधेरे को कोसने के बजाय एक नन्हा दीप जला देना श्रेयस्कर है।]

जहाँ प्रो० साहनी के शिष्य अपने को भाग्यशाली मानते हैं वहीं शिष्यों के मामले में प्रो० साहनी भी भाग्यशाली रहे। उनके शिष्यों ने जिस अटूट धैर्य और निष्ठा से उनके बाद 'बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पेलियोबॉटनी' की श्री वृद्धि की है, वैसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

उनका विवाहित जीवन अत्यन्त सुखी था। पत्नी के रूप में श्रीमती साहनी को पाकर निश्चय ही वे अपने भाग्य की सराहना करते रहे होंगे। प्रो० साहनी ने जीवन में जो कुछ भी करना चाहा, उसमें उनकी पत्नी का सक्रिय सहयोग बराबर रहा। चाहे वह दुर्गम स्थानों में पौधों और जीवाश्मों की खोज हो या देश-विदेश की यात्रायें, श्रीमती साहनी सदैव उनके साथ जाती थीं। यही नहीं, प्रो० साहनी की मृत्यु के बाद वैधव्य के दुःख को भूलकर, वे पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट के उन्नयन में लग गयीं और अपने जीवन के अन्त (1985) तक इस संस्थान से जुड़ी रहकर पति के कार्य को आगे बढ़ाती रहीं।

'शुक्र नीति' में आदर्श भारतीय नारी के लिए कहा गया है—

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धापतिदेशानुवर्तिनी।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु॥
दासीव दिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत।
—शुक्र नीति 4/4

[वह (पत्नी) मन, वचन और कर्म से शुद्ध हो, पति का सदा साथ देने वाली हो, छाया की तरह पति के पीछे चलने वाली और स्वच्छ हो, हितकारक कार्यों में वह मित्र के समान पति की सहायता करने वाली हो और दासी की तरह पति जो शुभ कार्य का आदेश दे उसे वैसा ही करे।]

इस कसौटी पर श्रीमती साहनी खरी उतरती हैं।

प्रो० साहनी के व्यक्तित्व के अनेक ऐसे भी पहलू हैं जिनके विषय में लोग कम ही जानते हैं। अपने समय के शीर्षस्थ और व्यस्ततम वैज्ञानिक होने के बावजूद वे शतरंज के खेल में निपुण थे। विद्यार्थी जीवन में हाकी और टेनिस के खिलाड़ी रह चुके थे। गीली मिट्टी से तरह-तरह की आकृतियाँ बनाने के शौक के साथ-साथ संगीत में भी उनकी गहरी रुचि थी। सितार और वायलिन बहुत बढ़िया बजाते थे। उन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान था किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी से उनका विशेष लगाव था गो कि औपचारिक ज्ञान न होने से वे अँग्रेजी में ही लिखते रहे।

उनके निर्देशन में 16 शोधार्थियों ने शोध उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्रो० साहनी के व्यक्तिगत संग्रह के 9,500 शोधपत्रों के रीप्रिन्ट्स, 590 पुस्तकें, 500 शोधपत्रिकायें और अनगिनत जीवाश्मों और पत्थरों के टुकड़ों के नमूने आज भी लखनऊ में बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पेलियोबॉटनी की शोभा बढ़ा रहे हैं।

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन ने प्रो० साहनी को 'Restless spirit' (बेचैन आत्मा) कहा है।

प्रो० साहनी की आत्मा बेचैनी से इस जन्म शती के अवसर पर हमें स्वर्ग से निहार रही होगी। उनकी बेचैन आत्मा को तो तभी शांति मिलेगी जब उन्हें भारतीय वनस्पति विज्ञान की प्रगति की झाँकी मिलेगी। भारतीय भारतीय वनस्पति विज्ञान की प्रगति सुनिश्चित करना ही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। क्या हम उनकी बेचैन आत्मा को बेचैन ही रहने देंगे?

●●

प्रो० साहनी द्वारा जीवित पादपों पर किया गया शोध

प्रो० बीरबल साहनी मूल रूप से पुरावनस्पति विज्ञानी थे किन्तु जीवित पादपों पर उनके द्वारा किया गया शोधकार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका सर्वप्रथम शोधपत्र 1915 में 'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' (*New Phytologist*) में प्रकाशित हुआ था। इसका शीर्षक था—'फॉरेन पॉलेन इन द ओव्यूल्स ऑव गिंगो एण्ड ऑव फॉसिल प्लांट्स' ('Foreign Pollen in the Ovules of *Ginkgo* and of Fossil Plants')। उन्होंने गिंगो के लगभग एक दर्जन अण्डाशय में से 8 में गिंगो के अतिरिक्त किसी और पादप के परागकणों की उपस्थिति नोट की। यह पौधा मॉन्टपेलियर से प्राप्त किया गया था। ये परागकण अंकुरित भी हो रहे थे। अधिकांश में दो कोशिकायें बन चुकी थीं और किसी-किसी में परागनलिका भी दिख रही थी। इस प्रकार की सूक्ष्मदृष्टि साहनी में प्रारम्भ से ही थी, किन्तु जो चौंकाने वाली और विशेष सराहनीय बात है वह यह कि इतनी कम उम्र में साहनी ने इसी शोध-पत्र में आगे यह कहा है कि यदि इसी प्रकार का उदाहरण जीवाश्म में मिलता तो निश्चय ही उन परागकणों को उसी पादप के परागकण मान लिया जाता। मात्र अंकुरण की दशा में परागकणों का अण्डाशय में पाया जाना यह नहीं सिद्ध करता कि वे परागकण उसी विशेष पादप के ही हैं। साहनी का दूसरा शोधपत्र 1915 में ही 'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' में ही प्रकाशित है और यह शोधपत्र नेफ्रोलेपिस वॉलुबिलिस (*Nephrolepis volubilis*) की आंतरिक रचना से सम्बन्धित है। यह पौधा (फर्न) कुआलालम्पुर से एकत्र किया गया था। यह एक विचित्र तरह का फर्न है जिसका स्टोलन (Stolon) किसी वृक्ष का आधार पाकर 16 फीट की ऊँचाई तक पहुँच सकता है। मुख्य पौधे के बगल से अनेक पौधे निकलते हैं जो मुख्य पौधे से ऊपर पहुँच जाते हैं और जब नीचे धरती पर गिरते हैं तो उनमें अपनी जड़ें निकल आती हैं। स्टोलन की आंतरिक रचना का बारीकी से अध्ययन करने के बाद साहनी ने बताया कि आधार पर तो आंतरिक रचना 'प्रोटोस्टील' होती है जो बगल के पौधों में आगे चलकर 'डिक्टियोस्टील' में बदल जाती है।

1916 में साहनी का तीसरा शोधपत्र भी 'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' में ही प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने नेफ्रोलेपिस कॉर्डीफोलिया (*Nephrolepis cordifolia*) के तने (ट्यूबर) की आंतरिक रचना का अध्ययन किया है। साहनी ने सडबरी हार्डीमान (Sadbury Hardyman) पुरस्कार के लिए एक शोध-निबन्ध तैयार किया—'इवोल्यूशन ऑव ब्रांचिग इन द फिलिकेल्स' जो 1917 में 'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' में प्रकाशित हुआ।

प्रो० आर० एच० कॉम्पटन (R. H. Compton) ने दक्षिण अफ्रीका से 1914 में बहुत से पादप एकत्र किये थे। उसी में एक्मोपाइल पांचेरी (*Acmopyle Pancheri*) नामक 'कोनिफर' था। इस पौधे का नामकरण मूल रूप से पांचर (Pancher) द्वारा पोडोकॉर्पस पेक्टिनेटा (*Podocarpus pectinata*) किया गया। बाद में 1869 में ब्रांगनियर्ट और ग्रिस (Brongniart and Gris) ने इसका नाम डाक्राइडियम पांचेरी रखा और अन्त में पिल्जर (Pilger) ने वंश एक्मोपाइल में इसे बदल दिया। नाम से ऐसा लगता है जैसे बीजद्वार (माइकोपाइल) इसमें ऊपर

की ओर है, पर वास्तविकता यह है नहीं । साहनी ने इस पौधे की आकारिकी और आंतरिक रचना का विस्तार से अध्ययन किया । यह कार्य लन्दन विश्वविद्यालय की डी० एस-सी० उपाधि के लिए प्रस्तुत उनके शोध-ग्रंथ का एक हिस्सा है ।

कोल्टर और चेम्बरलेन ने 1917 में और पुन: चेम्बरलेन ने 1935 में एक्मोपाइल को 'टैक्सिनी' ग्रुप में रखा था किन्तु साहनी ने इसे पोडोकॉर्पेसी में रखा । बाद में साहनी के विचार की पुष्टि फ्लोरिन (Florin) ने 1948 में की ।

1920 में साहनी ने टैक्सस (*Taxus*) के बीज की रचना का अध्ययन किया । उन्होंने टैक्सस, टोरेया (*Taxus, Torreya*) और सेफेलोटैक्सस (*Cephatotaxus*) के बीजों के अध्ययन के आधार पर यह कहा कि ये तीनों पौधे 'कोनिफर्स' से भिन्न हैं और इनके लिए एक अलग ऑर्डर (Order) 'टैक्सेलीज' (Taxales) बनाया । इसके 28 वर्ष बाद फ्लोरिन (Florin) ने 1948 में बोटेनिकल गजेट (*Botanical Gazette*) में साहनी के मत की पुष्टि की । युवावस्था में ही साहनी कितने प्रखर बुद्धि के थे, यह उसका ज्वलंत प्रमाण है ।

1924 में साहनी का 'इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी' का अध्यक्षपदीय व्याख्यान 'द ऑन्टोजेनी ऑव वास्कुलर प्लांट्स एण्ड द थियरी ऑव रीकैपिटुलेशन' ('The Ontogeny of Vascular Plants and the Theory of Recapitulation') के पूर्व जीवविज्ञानियों की यह आम धारणा थी कि इस थियरी के प्रमाण प्राणियों से ही मिलते थे, किन्तु साहनी ने पहली बार विश्वासपूर्वक यह बताया कि यह थियरी पादपों के लिये भी समान रूप से लागू होती है । उन्होंने अपनी अवधारणा के प्रमाणस्वरूप न केवल बहुत से फर्नों के उदाहरण प्रस्तुत किये वरन् अनावृत-बीजियों, आवृतबीजियों के साथ ही साथ शैवाल और ब्रायोफाइट के भी उदाहरण प्रस्तुत कर अपने विस्तृत ज्ञान का परिचय दिया।

1923 में साहनी ने साइलोटम (*Psilotum*) और मेसिप्टेरिस (*Tmesipteris*) पर कार्य प्रारम्भ किया और 1925 में रायल सोसायटी के 'फिलॉसोफिकल ट्रैंजैक्शन्स' में मेसिप्टेरिस विसिलार्डी (*T. vicillardi*) की बाह्य अकारिकी और आंतरिक रचना से सम्बन्धित शोधपत्र प्रकाशित किया । साहनी ने आमतौर से पायी जाने वाली मेसिप्टेरिस टैनेंसिस (*T. tannensis*) से भिन्न माना । इसी के साथ साहनी ने एस्टेरोजाइलॉन (*Asteroxylon*) और लाइकोपोडियम (*Lycopodium*) से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि मेसिप्टेरिस की समानता डेवोनियन काल के पादप एस्टेरोजाइलॉन से अधिक है ।

एक अन्य शोधकार्य जिसे साहनी ने कैम्ब्रिज में प्रारम्भ किया था, किन्तु भारत वापस आने के बाद अपने एक शिष्य ए० के० मित्र के सहयोग से पूरा किया, वह भी उल्लेखनीय है । पहले वनस्पति विज्ञानियों का ऐसा मत था कि पोडोकार्पस (*Podocarpus*) पोडोकार्पेसी कुल का सबसे आदिम पौधा है किन्तु साहनी ने यह सिद्ध किया कि पोडोकार्पस नहीं, बल्कि डाक्राइडियम (*Dacrydium*) और भी आदिम है । डाक्राइडियम से ही एक ओर तो पोडोकार्पस का विकास हुआ और दूसरी ओर एक्मोपाइल (*Acmopyle*) का ।

प्रो० साहनी ने हिमालय की पहाड़ियों और जंगलों की अनेक यात्रायें की थीं । 1927 में उन्होंने बोटेनिकल सोसायटी की शोध पत्रिका में एक टिप्पणी प्रकाशित की 'ए नोट ऑव द फ्लोटिंग आइलैण्ड एण्ड वेजिटेशन ऑव

खाजियर, नियर चम्बा इन द नार्थ-वेस्ट हिमालयाज' (A Note on the Floating Island and Vegetation of Khajiar Near Chamba in the N. W. Himalayas') । प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने की उनकी दृष्टि निराली थी ।

एक आवृतबीजी पादप फाइकस कृष्णी (*Ficus Krishnae*) के लिए यह आम धारणा प्रचलित है कि चम्मच या कटोरी जैसी इसकी पत्तियों में भगवान श्रीकृष्ण मक्खन खाते थे । 1920 में लाहौर में साहनी ने एक युवा गिंगो वृक्ष में फूलों की खोज करते हुए इस बात का पता लगाया कि गिंगो की कुछ असामान्य पत्तियाँ भी फाइकस कृष्णी की पत्तियों जैसी होती हैं । साहनी ने इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी के जर्नल में 1933 में प्रकाशित लेख में न केवल उपर्युक्त बात का उल्लेख किया वरन् इसी प्रकार की रचनाओं का उल्लेख मीसोजोइक और टर्सियरी काल के गिंगो, गिंग्वाइटिस (*Ginkgoites*), गिंगोडियम (*Ginkgodium*) और बाइयरा (*Baiera*) की जातियों (स्पीशिज) में किया । उन्होंने अन्त में लिखा है कि यह निश्चय ही रहस्यपूर्ण है कि इस प्रकार की विचित्र रचना भूवैज्ञानिक समय से अभिलक्षित होती आ रही है ।

पश्चिमी हिमालय के लैंसडाउन (गढ़वाल) क्षेत्र से ओक या क्वर्कस इनकाना (*Quercus incana*) के वृक्षों पर परजीवी के रूप में लटके विस्कम जापोनिकम (*Viscum japonicum*) के बीजों के अध्ययन से साहनी ने पता लगाया कि फलों से बीज तेजी से बाहर निकलते हैं और दो या दो से अधिक फीट की दूरी तक चले जाते हैं, कुछ उसी तरह जैसे बुलेट से गोली निकलती है । साहनी ने पाया कि फल बरसात के मौसम में पकते हैं और फलों में एक चिपचिपी पर्त पायी जाती है । नमी या पानी के कारण यह पर्त फूल जाती है और इसी कारण ऊपर की ओर से जब फल फटते हैं तो बीज तेजी से बाहर निकलते हैं । साहनी का यह शोध-कार्य 'जर्नल ऑव द इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी' में 1933 में प्रकाशित हुआ ।

1935 में साहनी ने वनप्याजी (*Asphodelus tenuifolius*) की जड़ों पर एक छोटा शोध-पत्र प्रकाशित किया । इसकी जड़ों की एक विशेषता यह है कि अन्य एकदलीय पादपों की जड़ों से भिन्न, इसकी झखड़ा जड़ों के बीच से एक मोटी जड़ निकली होती है । साहनी ने इसकी जड़ों की आंतरिक रचना का भी अध्ययन किया और बताया कि इस पौधे में अनेक जड़ें 'कॉर्टेक्स' (Cortex) से निकलती हैं । इसका सम्बन्ध साहनी ने सारोनियस (*Psaronius*) से जोड़ते हुए एक छोटा शोध-पत्र प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था—'द रूट्स ऑव सारोनियस, इन्ट्राकॉर्टिकल ऑर इक्सट्राकॉर्टिकल ?' ('The Roots of *Psaronius*, Intra-cortical or Extra-cortical') । बाद में (1942) इस पौधे का विस्तृत अध्ययन साहनी के एक शिष्य डी० डी० पन्त (D. D. Pant) ने किया । साहनी द्वारा जीवित पादपों पर किया गया यह अध्ययन सम्भवतः अन्तिम था । इसके बाद वे पूर्णरूपेण पुरावनस्पतिविज्ञानी हो गये ।

(प्रो० पी० महेश्वरी के लेख पर आधारित)

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

●●

प्रो० बीरबल साहनी के पुरावनस्पतीय कार्य

डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव

प्रोफेसर बीरबल साहनी विलक्षण प्रतिभा के धनी वनस्पतिविज्ञानी थे। उनकी विलक्षणता का आभास उनके बहुआयामी व्यक्तित्व से मिलता है। जहाँ एक ओर वह जीवित पौधों की आकारिकी, आन्तरिक संरचना व वर्गीकरण में अपने सम्पूर्ण शोध-काल में उत्सुक रहे, वहीं उन्होंने भारत में जीवाश्मविज्ञान की आधारशिला रखी। जीवाश्मविज्ञान के क्षेत्र में न केवल उन्होंने अनेकानेक जेनेरा (Genera) तथा स्पीशीज (Species) को स्थापित किया, अपितु उनके आधार पर अनेक ठोस सिद्धान्तों को जन्म दिया। सन् 1891 में पंजाब के एक गाँव में जन्मे इस महान वैज्ञानिक के अन्दर एक साथ कई दिशाओं में शोध करने व कराने की अद्भुत क्षमता थी। उनके शोध-पत्रों को सरसरी तौर से देखने पर भी उनमें एक अद्भुत कौशल और विशिष्ट अर्न्तदृष्टि देखने को मिलती है। उनके जीवाश्म-पौधों के गहन अध्ययन का प्रभाव वनस्पति विज्ञान की लगभग सभी प्रासंगिक शाखाओं पर स्पष्ट दिखायी देता है। यही नहीं, यह प्रभाव स्तरक्रम विज्ञान, पुराभूगोल तथा भूविज्ञान की अन्य शाखाओं पर भी छाया हुआ है। उनके ज्ञान की विविधता का अनुमान इससे लगाया जा सकता कि उन्होंने प्राचीन भारत में सिक्का ढालने की कला पर भी शोधपत्र छापा। प्रस्तुत लेख में इस बहुआयामी व्यक्तित्व के एक प्रमुख आयाम—उनके द्वारा जीवाश्म पौधों पर किये गये पुरावनस्पतीय कार्य—की यहाँ संक्षेप में चर्चा की गई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि साहनी जीवाश्मविज्ञान की ओर अपने गुरु प्रो० सर ए० सी० सीवर्ड के कारण आर्कषित हुए। सन् 1914 में कैम्ब्रिज से स्नातकीय उपाधि प्राप्त करके उन्होंने सर सीवर्ड के शिष्यत्व में शोध प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में तो वे मुख्यत: जीवित टेरिडोफाइट्स एवं कोनीफर्स की आकारिकी तथा आन्तरिक संरचना में कार्य करते रहे, किन्तु शीघ्र ही पुरावनस्पतीय खोजों से भी जुड़ गये। 1919 में विज्ञान की डॉक्टरेट उपाधि लेकर भारत लौटने के पूर्व शोध-छात्र के रूप में उन्होंने जीवित तथा जीवाश्म—दोनों प्रकार के पौधों पर कार्य किया। कार्य करने का यह ढंग उन्होंने जीवनपर्यन्त अपनाया। विदेश में जीवाश्म पौधों पर की गयी खोज सर्वप्रथम दो शोध-पत्रों के रूप में सामने आयी। दोनों के विषय बिल्कुल भिन्न वर्ग के पौधे थे—प्रथम था, पेलियोजोइक फर्न की आकारिकी एवं आन्तरिक संरचना पर, तथा द्वितीय था, गोण्डवाना लैण्ड के जीवाश्म पौधे। अध्ययन के इन दोनों क्षेत्रों में वे प्रारम्भ से अन्त तक लगे रहे।

कल्पना कीजिए कि भारत जैसे विशाल देश में जहाँ जीवाश्म पौधों का एक विस्तृत भंडार है, एक अकेला वैज्ञानिक 1919 में इनके अध्ययन में लगा। उस समय तक भारतीय भू-विज्ञान का ज्ञान भी अपूर्ण तथा अधकचरा था। ध्यान देने की बात यह है कि साहनी को मात्र जीवाश्म पौधों ने ही नहीं आकृष्ट किया, अपितु भारतीय भू-

---

वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलिज, इलाहाबाद-211002

विज्ञान की आवश्यकता भी उनके मस्तिष्क में थी। वर्ष 1918 से 1949 के बीच साहनी क अनेक शोध-पत्र प्रकाशित हुए जिनमें जीवाश्म विज्ञान के लगभग सभी आयामों की चर्चा है, मौलिक सिद्धान्त हैं, तथा चले आ रहे प्राचीन सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए उनके पक्ष या विपक्ष में तर्क हैं। अनेक नये जीवाश्म पौधों के वर्णन के अतिरिक्त उन्होंने अनेक पुरालिपीय तथा भूवैज्ञानिक प्रश्न—जैसे परमोकार्बोनीफेरस जीवन, वेगनर के महाद्वीपी अलगाव, हिमालय का उद्‌भव व विकास, आदि पर अपनी विश्लेषणात्मक टिप्पणी की है।
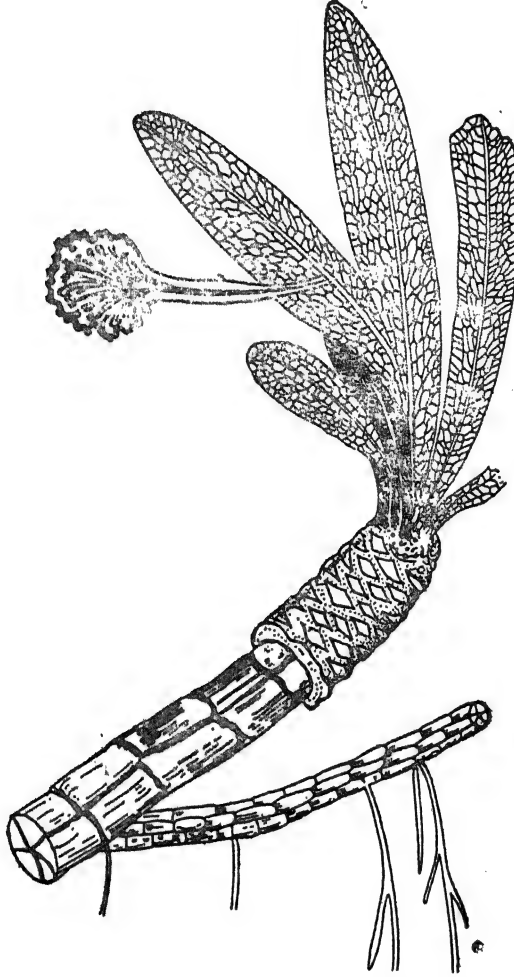
Glossopteris, reconstruction. (Courtesy of D. D. Pant)

यूँ तो साहनी ने भारत के अनेक भागों से जीवाश्म पौधों का संग्रह किया, किन्तु बिहार की राजमहल पहाड़ियाँ, दक्षिण की इन्टरट्रैपियन सिरीज तथा पंजाब में स्थित (अब पाकिस्तान में) साल्ट रेन्ज, उनके आकर्षण के

प्रमुख केन्द्र रहे। राजमहल श्रेणियों में स्थित आम्रपाडा तथा निपानिया नामक स्थानों को साहनी ने अपने विश्व-प्रसिद्ध खोजों बेनेटाइटेलीज ऑर्डर के 'विलियमसोनिया सीवार्डियाना' तथा पेन्टाक्सिनी से अमर कर दिया। आइये, साहनी के गोण्डवानालैण्ड फ्लोरा के कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों का जिक्र करें।

Williamsonia sewardiaua, reconstruction. (After Sahni, 1932b).

भारत, विशाल गोण्डवानालैण्ड का एक महत्वपूर्ण भाग है। सन् 1885 से जब से फीस्टमान्टेल' ने यह देश छोड़ा तथा 1919 में जब साहनी अपने देश वापस आये—इस बीच प्रो० सीवर्ड ही एक ऐसे जीवाश्म विज्ञानी थे जिन्होंने भारतीय गोंडवानालैंड के जीवाश्म पौधों में अपनी रुचि सतत बनाये रखा। उनके शोधछात्र के रूप में साहनी भी इस कार्य में संयुक्त हुए जो 1920 में 'इण्डियन गोंडवाना प्लान्ट्स : ए रिवीजन' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें चार नये जेनेरा के साथ-साथ वर्णित अन्य जीवाश्म पौधों की आकारिकी तथा आंतरिक संरचना पर, विशेषकर

क्यूटिकिल में, अनेक नई तथा महत्वपूर्ण सूचनायें हैं। स्वाभाविक था कि साहनी ने अपने देश वापस आने पर इस फ्लोरा पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सन् 1921 में आठवें भारतीय साइंस कांग्रेस की वनस्पति विज्ञान शाखा के अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने भारतीय पुरावनस्पति शास्त्र की स्थिति का सार प्रस्तुत किया और दिशा निरूपित की। उन्होंने भारतीय जीवाश्म पौधों के पुर्नमूल्यांकन (रिवीजन) पर बल दिया। 'रिवीजन ऑव इण्डियन फॉसिल प्लान्ट्स' के अन्तर्गत उन्होंने कोनीफरेल्स का संशोधन किया। यह दो भागों में छपा—पहला, जिसमें इम्प्रेशन तथा इन्क्रस्टेशन्स प्रकार के जीवाश्म थे (1928 में) तथा दूसरा, जिसमें पेट्रीफैक्शन्स थे (1931 में)। इन रिवीजनों में अधिकांश जीवाश्म गोंडवानालैंड के थे। इसमें दक्षिण भारत से प्राप्त मादा शंकुओं वाले दो जीवाश्म—'इण्डोस्ट्रोबस' तथा टैक्सिथोस्ट्रोबस' नामक दो नये दिलचस्प जेनेरा भी हैं। इस संशोधन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि साहनी ने भारतीय कोनीफर्स तथा यूरोपीय कोनीफर्स के फ्लोरा में अन्तर स्पष्टया।

Pentoxyleae. A, Foliage bearing branch. B. Female cone (After Sahni, 1948). C. Male flower. (After Vishnu Mittre, 1954)

यह सही है कि साहनी ने बाद में फ्लोरा के संशोधन पर उतना ध्यान नहीं दिया; क्योंकि उनका खोजी मन नये व दिलचस्प जीवाश्मों की खोज में लगा रहा। एक तरह से यह ठीक ही रहा अन्यथा बाद में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ कैसे होतीं? उदाहरण के लिये, अपर गोंडवानालैंड की राजमहल पहाड़ियों में जुरैसिक काल के कुछ

असामान्य जीवाश्मों की खोज । इन पहाड़ियों में दोनों प्रकार के जीवाश्म थे—इम्प्रेशन्स तथा पेट्रीफैक्शन्स । पर्ण-इम्प्रेशन के आधार पर साहनी ने अपने शिष्य ए० आर० राव के साथ सम्मिलित रूप से कई शोध-पत्र (1933, 1934, 1935) छापे । उन्होंने कुछ नई स्पीशीज और 'ऑन्थिओडेन्ड्रॉन' तथा 'राजमहलिया' नामक दो नये जेनेरा स्थापित किये ।

इन्हीं पहाड़ियों के पेट्रीफैक्शन्स में से 1932 में साहनी ने एक नये पादप 'होमोजाइलॉन राजमहलेन्स' की रचना की । दरअसल यह द्वितीयक वृद्धि वाला वुड (काष्ठ) जीनस है, जो पिक्नोजाइलिक है और जिसमें पतली मेडयूलरी किरणें पायी जाती हैं । पहले तो साहनी ने इसकी तुलना 'साइकेडिऑयडिया' तथा 'विलियमसोनिया' से की, किन्तु बाद में निष्कर्ष निकाला कि यह ऐन्जियोस्पर्म्स के मैग्नोलियेसी कुल के पास है । मैग्नोलियेसी कुल में भी जाइलम में वेसेल नहीं पायी जाती । साहनी ने प्रतिपादित किया कि प्रारम्भ के द्विबीजपत्री पौधे इसी 'होमोजाइलॉन' से जन्मे । वैसे जुरैसिक काल से ऐन्जियोस्पर्म की उत्पत्ति अकल्पनीय थी । हालांकि बाद में इसे 'साइकेडिऑयडिया' का ही वुड माना गया ।

Azolla intertrapea, fossil megaspore with massulae (After Sahni, 1941)

राजमहल की ही पहाड़ियों से—विशेष रूप से आम्रपाड़ा से प्राप्त किये गये दो नमूनों के आधार पर साहनी ने यह सिद्ध कर दिया कि सीवर्ड (1900, 1917) द्वारा वर्णित पर्ण-जीवाश्म, 'टाइलोफिलम'; तथा जीवाश्म, 'बैकलैंडिया इंडिका'; तथा बैंक्राफ्ट (1913) द्वारा वर्णित 'विलियमसोनिया स्काटिका' दरअसल एक ही पौधे के अंग

हैं। परम्परा के अनुसार साहनी (1932) ने इसका नया नामकरण किया—'विलियमसोनिया सीवार्डियाना'। बनेटाइटेलीज ऑर्डर का यह सबसे अच्छा और काफी हद तक पूर्ण रूप से जाना गया जीवाश्म है। इसके पुनर्निर्माण के चित्र में साहनी ने पौधे के स्वरूप और प्रकृति का भी चित्रण किया है।

आम्रपाड़ा और निपानिया के अनेक जीवाश्मीय नमूनों को साहनी ने अपने शिष्य बी० पी० श्रीवास्तव को अध्ययन हेतु सौंपा। युवावस्था में ही अकाल मृत्यु हो जाने के कारण श्रीवास्तव के कार्य को 1945 में मरणोपरान्त साहनी व अन्य के सहयोग से छापा गया। इसमें एक नये जीनस तथा स्पीशीज 'पेन्टाक्सिलॉन साहनाई' का विधिवत अध्ययन था। यह अपने आप में एक अकेला और अद्भुत जीनस था, जिसके अनुप्रस्थ काट में सदैव पाँच स्टील मिलते थे, तथा प्रत्येक में प्राथमिक बंडल अपने ही द्वितीयक जाइलम से घिरा रहता था, जो केन्द्र की ओर काफी अधिक विकसित था। श्रीवास्तव के पास नमूनों में बीजांडधारी शंकु भी मिले थे, जिनको 'कार्नोकोनाइटिस' नाम दिया गया था। साहनी ने 1948 में छपे अपने सबसे बहुमूल्य शोध-पत्र में 'निपेनियोफिलम' पर्ण-जीवाश्म, 'कार्नोकोनाइसिस' शंकु जीवाश्म तथा ,पेन्टॉक्सिलॉन' तने को एक साथ जिम्नोस्पर्म में एक अद्वितीय वर्ग की स्थापना की, जिसे पेन्टॉक्सिली कहते हैं। इस वर्ग में कोनीफरेल्स, बेनेटाइटेल्स तथा साइकेडेल्स—तीनों के लक्षण मिलते हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त इसके अपने विशिष्ट लक्षण हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रारम्भ से ही साहनी के शोध की एक दिशा पेलियोजोइक काल के फर्न का अध्ययन था। उन्होंने सीनोप्टेरिडिनी समूह के फर्न-जीवाश्म—विशेषकर जाइगॉप्टेरिडेसी पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सीनोप्टेरिडिनी वैसे तो अपनी विशेषताओं के कारण आकर्षण का विषय रहे हैं किन्तु इस वर्ग में शोध-कार्य करने वालों को कम कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। इसके जीवाश्म भी बहुत खंडित अवस्था में पाये जाते हैं। सामान्यत: किसी नये जीवाश्मविज्ञानी के लिये यह वर्ग चुनना कठिन साबित होता, किन्तु साहनी ने 1918 में छपे अपने शोध-पत्र में न केवल पत्तियों के शाखान्वित होने के क्रम की विवेचना की अपितु विभिन्न वैज्ञानिकों के उस समय के प्रचलित दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करते हुए टिप्पणी की। साहनी की खोज आस्ट्रेलिया के 'जाइगॉप्टेरिडियन' तने में लगी रहीं और इस दिशा में उन्होंने कई शोध-पत्र छापे। उन्होंने 'आस्ट्रैलोक्लेप्सिस' नामक ट्री-फर्न जीनस की स्थापना की जिसमें विशेष प्रकार का तना होता है। शोध की इस धारा को उन्होंने अन्त तक जारी रखा और 'जाइगॉप्टेरिस प्राइकेरिया' तथा 'ग्रैमाटॉप्टेरिस बाल्डौफाई' (1932) नामक ट्री-फर्न पर कार्य करते रहे। सन् 1948 में, अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व जब वे दो महीने के लिए स्टॉकहोम में रुके तो वहाँ स्वीडिश म्यूजियम ऑव नेचुरल हिस्ट्री में कई सीनॉप्टेरिड का अध्ययन किया।

दक्षिण भारत के इण्टरट्रैपियन सिरीज के सिलिकायुक्त जीवाश्म पौधों की ओर साहनी का झुकाव सन् 1925 के आस-पास हुआ जब जियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया के निदेशक ने वहाँ की चट्टानों में पाये जाने वाले जीवाश्म को पहचानने के लिये नमूना भेजा। इसमें जलीय फर्न 'एजोला' का जीवाश्म था। साहनी व उनके शिष्यों और सहयोगियों ने छिंदवाड़ा जिले के आस-पास काफी अध्ययन किया। उन्होंने 1943 में 'एनिग्मोकॉर्पान' नामक द्विबीजपत्री फल का विस्तार से वर्णन किया। अनेक शोध-पत्रों में उन्होंने एकबीजपत्र वाले अनेक पाम जैसे जीवाश्मों को 'पामोजाइलॉन' नामक अस्थाई जीनस में रखा। इण्टरट्रैपियन में पाये जाने वाले पाम के फलों का रोडे के द्वारा वर्णित एक जीनस है 'निपैडाइटिस हिन्दी'। साहनी ने इसे बाद में जीनस निपा में रख दिया। भारत के इस भूभाग के जीवाश्मों का अध्ययन करके वे मात्र उनका वर्णन करना चाहते हों, ऐसा नहीं था। कई अवसर पर उन्होंने इन

जीवाश्मों के अध्ययन से वहाँ की पारिस्थितिकी, भौगोलिक सम्बन्ध तथा जीवाश्मों व चट्टानों की आयु पता लगाने जैसे प्रश्नों को उठाया और समीक्षा की।

साहनी की एक और अमूल्य देन है और वह यह है कि किस प्रकार से जीवाश्म-पौधों की सहायता से अवसादी या सेडीमेन्टरी चट्टानों की आयु ज्ञात की जाये। इस दिशा में किये गये उनके प्रयासों के कारण कम से कम दो जगहों पर प्रचलित धारणा को आघात पहुँचा—पहला तो दक्षिण ट्रैपियन में, और दूसरा पंजाब के साल्ट रेंज में। दक्षिण ट्रैप के पाम, फल, फूल, बीज, फर्न आदि के जीवाश्मों के अध्ययन से एक बात खुलकर सामने आ गयी कि वे चट्टानें टर्सियरी आयु की हैं न कि क्रेटेशियस की, जैसा कि भूगर्भशास्त्री मानते रहे हैं। इसी प्रकार जब सूक्ष्म-जीवाश्मों अर्थात् माइक्रोफॉसिल्स के अध्ययन के बाद साहनी ने सुझाया की साल्ट रेंज की आयु टर्सियरी होनी चाहिये न कि कैम्ब्रियन या प्री-कैम्ब्रियन, जैसा कि समझा जाता रहा है, तो भू-वैज्ञानिकों में खलबली मच गयी। यह विवाद दोनों पक्षों के बीच काफी समय तक चला। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में साहनी सूक्ष्मजीवाश्मों के अध्ययन में काफी रुचि लेने लगे थे। इस प्रकार के अध्ययन से तेल और कोयले के भण्डारों का पता लगाने में भी सहायता मिली।

जीवन के अन्तिम 6-7 वर्षों में प्रोफेसर साहनी की सारी शक्ति 'पेलियोबॉटनी इन्स्टीट्यूट' बनाने में लग गयी। इसे वे पुरावनस्पतिविज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय शोधशाला बनाना चाहते थे। लेकिन इन्स्टीट्यूट के निर्माण के साथ चिन्तायें भी घर करती गयीं। सारा काम प्रो० साहनी के कंधों पर था। 3 अप्रैल को इन्स्टीट्यूट के शिलान्यास के बाद 10 अप्रैल 1949 को यह महान वैज्ञानिक संसार से विदा हो गया। प्रो० साहनी क्या थे, इसका अनुमान विभिन्न दिशाओं में किये गये उनके कार्यों को देखकर सहज ही लगाया जा सकता है। कैसे सम्भव है कि एक अकेला व्यक्ति इतना काम, इतनी गहरायी और पूर्ण समन्वय करते हुये कर सके। समस्या को लगभग प्रत्येक सम्भावित दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करने वाला वह व्यक्ति सशरीर हमारे बीच नहीं है, किन्तु उसके कृतित्व से हम यदि कुछ सीख सकें, यही बड़ी उपलब्धि होगी। मैं प्रो० साहनी की स्मृति को नमन करता हूँ।

●●

प्रो० बीरबल साहनी के जीवन की महत्वपूर्ण तिथियाँ

1891—14 नवम्बर को पंजाब के शाहपुर जिले के भेड़ा नामक कस्बे में जन्मे।

1911—लाहौर से राय बहादुर डॉ० शिवराम कश्यप के शिष्य के रूप में स्नातक उपाधि; कैम्ब्रिज के एमानुयल कॉलेज में प्रवेश; प्रो० ए० सी० सीवर्ड से सम्पर्क।

1914—कैम्ब्रिज से स्नातक की उपाधि।

1915—'न्यू फाइटॉलोजिस्ट' में प्रथम शोधपत्र प्रकाशित।

1919—लन्दन विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० उपाधि; स्वदेश वापसी; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष नियुक्त।

1920—पंजाब विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त; पिता के मित्र श्री सुन्दर दास सूरी की सुपुत्री सावित्री सूरी से विवाह।

1921—लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष नियुक्त; भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वनस्पति अनुभाग के सभापति; प्रो० कश्यप, डॉ० डजन, और डॉ० रंगाचारी के सहयोग से इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी का गठन।

1923—इण्डियन बोटेनिकल सोसायटी के अध्यक्ष।

1926—इण्डियन साइंस कांग्रेस (भारतीय विज्ञान सम्मेलन) के भूगर्भ विज्ञान अनुभाग के सभापति।

1929—कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से एस-सी० डी० उपाधि से सम्मानित।

1930—पाँचवें अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति सम्मेलन (कैम्ब्रिज) के पुरावनस्पति अनुभाग के उपसभापति।

1933—लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के डीन।

1935—छठे अंतर्राष्ट्रीय वनस्पति सम्मेलन (एम्सटरडम) के पुरावनस्पति अनुभाग के उपसभापति।

1936—लन्दन की रायल सोसायटी के फेलो निर्वाचित।

1938—बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के बर्कले मेडल से सम्मानित; भारतीय विज्ञान सम्मेलन के वनस्पति अनुभाग के सभापति।

1939—भारतीय पुरावनस्पति विज्ञानियों की कमीटी का गठन; 'पेलियोबॉटनी इन इण्डिया' शीर्षक से एक रिपोर्ट का प्रकाशन।

1940—भारतीय विज्ञान सम्मेलन के सभापति; नेशनल एकेडेमी ऑव साइन्सेज के सभापति।

1943—लखनऊ विश्वविद्यालय के नवगठित भूगर्भविज्ञान विभाग के अध्यक्ष।

1945—न्यूमेसमेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया के 'नेल्सन राइट मेडल' से सम्मानित; रायल सोसायटी के विज्ञान सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व।

4946—पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट का गठन और उसके प्रथम निदेशक।

1947—'सी० आर० रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार' से सम्मानित; भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में यूरोप और अमेरिका की प्रयोगशालाओं और शोध केन्द्रों का अध्ययन; इलाहाबाद और पटना विश्वविद्यालयों द्वारा डी० एस-सी० की मानद उपाधियों (**Honoris Causa**) से अलंकृत।

1948—अमेरिका की बोटेनिकल सोसायटी के करेस्पांडिंग सदस्य; अमेरिकन एकेडेमी ऑव आर्ट एण्ड साइन्सेज के विदेशी सदस्य; इन्टरनेशनल पेलियोन्टॉलोजिकल यूनियन के उपसभापतियों में से एक उपसभापति निर्वाचित; 1950 में स्टाक होम में होने वाली इन्टरनेशनल बोटेनिकल कांग्रेस के सभापति निर्वाचित।

1949—3 अप्रैल को प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा पेलियोबॉटनी इंस्टीट्यूट की नींव रखी गई; 8 अप्रैल को हृदयाघात और 10 अप्रैल को निधन।

●●

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

वर्ष 1991–92 के पदाधिकारी

1. श्री गजानन्द आर्य	सभापति
2. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	पदेन उपसभापति
3. डॉ० रामधर मिश्र	"
4. श्री राम सहाय	"
5. प्रो० कृष्ण जी	"
6. डॉ० रामचरण मेहरोत्रा	"
7. डॉ० रामदास तिवारी	"
8. प्रो० यशपाल	"
9. प्रो० श्रीकृष्ण जोशी	उपसभापति
10. प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्ता	"
11. प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी	प्रधान मन्त्री
12. डॉ० अशोक कुमार गुप्ता	मन्त्री (भवन)
13. डॉ० मुरारी मोहन वर्मा	संयुक्त मन्त्री
14. श्री दिनेशमणि	"
15. डॉ० जगदीश सिंह चौहान	कोषाध्यक्ष
16. श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	सम्पादक, विज्ञान
17. डॉ० अशोक महान	पुस्तकालयाध्यक्ष
18. डॉ० रामसुरंजन धर दुबे	आय-व्यय निरीक्षक
19. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद	स्थानीय अंतरङ्गी

20. श्री लोकमणिलाल जी	,,
21. डॉ० शिवगोपाल मिश्र	,,
22. डॉ० देवेन्द्र दत्त नौटियाल	,,
23. डॉ० श्रवण कुमार तिवारी, वाराणसी	बाह्य अंतरङ्गी
24. श्री डी० एन० भटनागर, दिल्ली	,,
25. डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल, रोहतक	,,
26. श्री अनिल कुमार शुक्ल, कानपुर	,,
27. डॉ० रामगोपाल, जोधपुर	,,
28. डॉ० समरजीत कर, कलकत्ता	,,
29. श्रीमती डॉ० बी० अनुराधा, मैसूर	,,
30. श्री नारायण दत्त, बम्बई	,,
31. डॉ० हर्ष के० गुप्ता, दिल्ली	,,
32. डॉ० राजशेखर भूसनूरमठ, धारवाड़	,,
33. डॉ० ब्रह्मेश्वर मिश्र, वाराणसी शाखा	,,
34. डॉ० नन्द किशोर वर्मा, रोहतक शाखा	,,
35. श्री ओम प्रकाश गुप्ता, बैलाडीला शाखा	,,

BIBLIOGRAPHY OF PROFESSOR SAHNI'S PUBLICATIONS

1915. Foreign pollen in the ovules of *Ginkgo* and of fossil plants. *New Phytol.* **14** (4 and 5) : 149-151.

1915a. The anatomy of *Nephrolepis volubilis* J. Sim. with remarks on the biology and morphology of the genus. Ibid. **14** (8 and 9) : 251-274.

1916. The vascular anatomy of the tubers on *Nephrolepis.* Ibid. **15** (3 and 4) : 72-80.

1917. Observations on the evolution of branching in the Filicales. Ibid. **16** (1 and 2) 1-23.

1918. On the branching of the Zygopteridean leaf and its relation to the probable 'pinna' nature of *Gyropteris sinuosa,* Goeppert. *Ann. Bot.* **32** (127) : 369-379.

1919. (With J. C. Wills). Lowson's textbook of botany (Indian edition). *Univ. Tut. Press. London.*

1919a. On an Australian specimen of *Clepsydropsis. Ann. Bot.* **33** (129) : 81-92.

1920. Petrified plant remains from the Queensland Mesozoic and Tertiary formations. *Queensland Geol. Surv. Publication.* No. 267 : 1-48.

1920a. On the structure and affinities of *Acmopyle Pancheri,* Pilger. *Phil. Trans. Roy. Soc. London.* **210** (B) : 253-310.

1920b. (With A. C. Seward). Indian Gondwana plants : a revision *Mem. Geol. Surv. Ind. Pal. Ind.* 7 (1) : 1-41.

1920c. On certain archaic features in the seed of *Taxus baccata,* with remarks on the antiquity of the Taxineae. *Ann. Bot.* **34** (133) : 117-133.

1921. On a new abnormality in the sporophyll of *Tmesipteris. Proc.* (*8th Ind. Sci, Cong., Calcutta*) *Asiat. Soc. Bengal* (N. S.). **17** (4) : 179.

1921a. A stem impression from the plant bearing beds near Khunmu (Kashmir), provisionally referred to *Gangamopteris Kashmirensis* Seward. Ibid : 200.

1921b. Note on the presence of a "tentpole" in the seed of *Cephalotaxus pedunculata. Ann. Bot.* 35 (138) : 297-298.

1921c. The present position of Indian palaeobotany. Pres. Add. 8th Ind. Sci. Cong. Cal. *Proc. Asiat. Soc. Bengal* (N. S.). **17** (3) : 152-175.

1923. On the theoretical significance of certain so-called "abnormalities" in the sporangiophores of the Psilotaceae. *Jour. Ind. Bot, Soc.* **3** (7) : 185-191.

1923a. On the structure of the cuticle in *Glossopteris angustifolia* Brongn. *Rec. Geol. Surv. Ind.* **54** (3) : 277-280.

1923b. Modern Psilotaceae and archaic terrestrial plants. *Nature.* **111** : 84.

1924. On the anatomy of some petrified plants from the Government Museum, Madras. *Proc.* 11th *Ind. Sci. Cong. Bangalore* : 141·

1945. The ontogeny of vascular plants and the theory of recapitulation. *Jour. Ind. Bot, Soc.* **4** (6) : 202-216.

1925a. (With E. J. Bradshaw). A fossil tree in the Panchet Series of the Lower Gondwanas near Asansol. *Rec. Geol. Surv Ind.* 58 (1) : 77-79.

1925b. On *Tmesipteris Vieillardi* Dangeard, an erect terrestrial species from New Caledonia. *Phil. Trans. Roy. Soc. Lond.* **213** (B) : 143-170.

1927. The southern fossil floras-A study in plant geography of the past. Pres. Add. *Proc.* 13*th Ind. Sci. Cong. Bombay* : 229-254.

1926a. (With T. C. N. Singh). On some specimens of *Dadoxylon Arberi* Seward from New South Wales and Queensland. *Jour. Ind. Bot. Soc.* 5 (3) : 103-112.

1927. On some petrified cones of Indian fossil conifers from the British Museum, London. *Proc.* 14*th Ind. Sci. Cong. Lahore* : 215.

1927a. (With A. K. Mitra). Notes on the anatomy of some New Zealand species of *Dacrydium. Ann. Bot.* **41** (161) : 75-89.

1927b. A note on the floating island and vegetation of Khajiar, near Chamba in the N. W. Himalayas. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **6** (1) : 1-7.

1928. Some pertified palms from the Central Museum, Nagpur. *Proc.* 19*th Ind. Sci. Cong. Calcutta* : 228.

1928a. On a collection of petrified tree-trunks discovered in Eden Gardens, Calcutta. Ibid.

1928b. Dicotyledonous plant remains from the Tertiary beds of Assam. Ibid. : 294.

1928c. Revision of Indian fossil plants. Pt. I. Coniferales. (a. Impressions and incrustations). *Mem. Geol. Surv. Ind. Pal. Ind.* (N. S.). **11** : 1-49.

1928d. On *Clepsydropsis australis*, a Zygopterid tree-fern, with a *Tempskya*-like false stem, from the Carboniferous rocks of Australia. *Phil Trans. Roy. Soc. London.* **217** (B) : 1-37.

1930. The relation of the late Palaeozoic floras to the early Mesozoic floras. *Proc. 5th Int. Bot. Cong. Cambridge* : 503-504.

1930a. On *Asterochlaenopsis*, a new genus of Zygropterid tree-ferns from western Siberia. *Phil. Trans. Roy. Soc. London.* **218** (B) : 447-471.

1931. On certain fossil epiphytic ferns found on the stems of the Palaeozoic tree-fern *Psaronius. Proc. 18th Ind. Sci. Cong. Nagpur* ; 270.

1931a. (With T. C. N. Singh). Notes on the vegetative anatomy and female cones of *Fitzroya patagonica* (Hook fils). *Jour. Ind. Bot. Soc.* **10** (1) : 1-20.

1931b. Materials for a monograph of the Indian pertified palms. *Proc. Acad. Sci. U. P.* **1** : 140-144.

1931c. Revisions of Indian fossil plants. Pt. II. Coniferales. (b. Petrifactions). *Mem. Geol. Surv. Ind. Pal. Ind.* (N. S.) **12** : 51-142.

1931d. Miscellaneous notes. Supplementary note on revisions of Indian fossil plants. Pt. II. Coniferales (b. Petrifactions). *Rec. Geol. Surv. Ind.* **65** (3) : 441-442.

1932. Anatomical proof of the cycadophyte affinities of *Taeniopteris spatulata* McCl. *Proc. 19th Ind. Sci. Cong. Bangalore* : 322.

1932a. *Palmoxylon Mathuri*, a new species of petrified palms from Cutch, western India. Ibid.

1932b. *Conites Hobsoni*, a new species of fossil ovuliferous cones from the Rajmahal Series, Bihar, Ibid : 322-323.

1932c. On the genera *Clepsydropsis* and *Cladoxylon* of Unger, and on a new genus *Austroclepsis. New Phytol.* **31** (4) : 270-278.

1932d. On the structure of *Zygopteris primaria* (Cotta) and on the relations between the genera *Zygopteris*, *Etapteris* and *Botrychioxylon*. *Phil. Trans. Roy. Soc. London.* **222** (B) : 29-45.

1932e. *Homoxylon rajmahalense* gen. et sp. nov., a fossil angiospermous wood, devoid of vessels, from the Rajmahal Hills, Bihar. *Mem. Geol. Surv. Ind. Pal. Ind.* **20** (2) : 1-19.

1932f. A petrified *Williamsonia* (*W. Sewardiana*. sp. nov.) from the Rajmahal Hills, India. Ibid. **20** (3) : 1-19.

1932g. On a Paleozoic tree 1 ferm, *Grammatopteris Baldaufi* (Beck) Hirmer. a link between the Zygopteridaceae and Osmundaceae. *Ann. Bot.* **46** (184):863-877.

1932h. Staminal movements in *Gerbera lanuginosa*. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **11** (3) : 241-242.

1933. The wood anatomy of a homoxylous dicotyledon. *Tetracentron sinense*. *Proc. 20th Sci. Cong. Patna* : 317.

1933a. (With A. R. Rao). On some Jurassic plants from the Rajmahal Hills. *Jour. and Proc. Asiat. Soc. Bengal* (N. S.). **27** (2) : 183-208.

1933b. *Dadoxylon Zalesskyi*, new species of Cordaitean trees from the Lower Gondwanas of India. *Rec. Geol. Surv. Ind.* **66** (4) : 414-429.

1933c. A fossil pentalocular fruit from Pondicherry, South India. Ibid. : 430-437.

1933d. On some abnormal leaves of *Ginkgo*. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **12** (1) : 50-55.

1933e. Explosive fruits in *Viscum japonicum* Thumb. Ibid. **12** (2) : 96-101.

1934. The silicified flora of the Deccan Intertrappean series. Pt. I. General. *Proc. 21st Ind. Sci. Cong. Bombay* 316-317.

1934a. The silicified flora of the Deccan Intertrappean series. Pt. II. Gymnospermou and angiospermous fruits. Ibid. : 317-318.

1934b. (With B. P. Srivastava)· The silicified flora of the Deccan Iatertrappean series. Pt. III. *Sausarospermum Fermori*. gen. et sp. nov. Ibid. : 318.

1934c. Dr. S. K. Mukerji, F. L. S. (1896--1934) (Obituary). *Jour. Ind. Bot. Soc.* **13** (3) : 245-249.

1934d. (With A. R. Rao). *Rajmahalia paradoxa* gen. et. sp. nov. and other Jurassic plants from the Rajmahal Hills. *Proc. Ind. Acad. Sci.* **1** (6) : 258-269.

1934e. Dr. Dukinfied Henry Scott (Obituary). *Cur. Sci.* **2** (10) 392-395.

1934f. The Deccan Traps : Are they Cretaceous or Tertiary ? Ibid. **3** (4) : 134-136.

1935. The relations of the Indian Gondwana flora with those of Siberia and China. *2nd Cong. Stratig. Carb. Heerlen*. **1** : 517-518.

1935a. *Homoxylon* and related woods and the origin of angiosperms. *Proc. 6th Int. Bot. Cong. Amsterdam*, **2** : 237-238.

1935b. The *Glossopteris* flora in India. Ibid. : 245-247.

1935c. Recent discoveries in the Rajmahal flora. Ibid. : 248-249.

1935d. (With A. R. Rao). Further observations on *Rajmahalia paradoxa. Proc. Ind. Acad. Sci.* **1** (11) : 710-713.

1935e. The roots of *Psaronius*, intra-cortical or extra-cortical ? A discussion. *Cur. Sci.* 3 (2) : 555-589.

1935f. Permo-Carboniferous life provinces with special reference to India. Ibid. **4** (6) : 385-390.

1936. Pollen grains in the stylar canal and in the overy of an angiosperm. Ibid. **4** (8) : 587-588.

1936a. Antiquities from the Khokra Kot mound at Rohtak in the Jumua Valley. Ibid. 4 (11) : 796-801.

1936b. The Karewas of Kashmir. Ibid. 5 (1) : 10-16.

1936c. The Himalayan uplift since the advent of Man: its culthistorical significance. Ibid. 5 (1) : 57-61.

1936d. A clay seal and a sealing of the Sunga period from the Khokra Kot mound (Rohtak). Ibid. 5 (2) : 80-81.

1936e. The supposed Sanskrit seal from Rohtak : A correction. Ibid. 5 (4) 206 and 215.

1936f. Wegener's theory of continental drift in the light of palaeobotanical evid-ence. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **15** (5) : 319-332.

1936g. The Gondwana affinities of the Angara flora in the light of geological evidence. *Nature.* **138** : 720-721.

1936h. The occurrence of *Matonidium* and *Weichselia* in India. *Rec. Goel. Surv. Ind.* **71** (2) : 152-165.

1937. Speculations on the climates of the Lower Gondwanas of India. *Proe. 17th Int. Geol. Cong. Moscow* : 217-219.

1937a. A mesozoic coniferous wood (*Mesembrioxylon shanensc* sp. nov.) from the southern Shan states of Burma. *Rec. Geol. Surv. Ind.* **71** (4) : 380-388.

1937b. (With W. Gothan). Fossil Plants from the Po. Series of Spiti. (N. W. Himalayas). Ibid. **72** (2) : 195-206.

1937c. Remarks on the papers on the *Gigantopteris* flora by Halle and Jongmans, *2nd Cong. Stratig. Carb. Heerlen.* 1935 : 517-518.

1937a. An appreciation of the late Sir J. C. Bose. *Sci.* and *Cult.* 3 (6) : 346-347.

1937e. Prof. K. K. Mathur (Obituary). *Cur. Sci.* 5 (7) : 365-366.

1937f. Revolutions in the plant world. Pres. Add. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* 7 : 46-60.

1937g. The age of the Deccan Trap (General Discussion). *Proc. 24th Ind. Sci. Cong. Hyderabad* : 459-471.

1937h. Wegener's theory of continental drift with reference to India and adjacent countries. (General Discussion). Ibid. : 502-520.

1931i. (With K. P. Rode). Fossil plants from the Interprappean beds at Mohgaon Kalan in the Deecan,—with a sketch of the geology of the Chhindwara district. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* 7 (3) : 165-174.

1938. Recent advances in Indian Palaeobotany. Pers. Add. Botany Section. *Proc. 25th Ind. Sci. Cong Jubil. Sess. Calcutta* (2) : 133-176 and *Luck. Univ. Stud.* (2) : 1-100.

1939. Discrepancies between the chronological testimony of fossil plants and animals. *Proc. 25th Ind. Sci. Cong. Calcutta.* (4)—Discussion : 156-163 and 195-196.

1939a. The relation of the *Glossopteris* flora with the Gondwana glaciation Pres. Add. Biol. Sec. Ind. Acad. Sci. *Proc. Ind. Acad. Sci.* 9 (1) B : 1-6.

1939b. The eastward opening of the Himalayan geosyncline into the Pacific ocean. *Proc. 6th Pacific Sci. Cong.* : 241-244.

1940. The Deccan Traps : an episode of the Tertiary era. Gen. Pres. Add. *Proc. 27th Ind. Sci. Cong. Madras* (2) : 1-21. *Prakrati.* 3 (1) : 15-35. 1944 (Gujrati trans.). *Prabuddha Karnataka*, **22** (2) : 5-19 (Kanarese trans. by H. S. Rao).

1940a. The palaeobotanical correlation of coal seams in India. *Proc. Nat. Inst. Sci. Ind.* 6 (3) : 581-582.

1941. Yaudheya coin moulds from Sunet near Ludhiana in the Sutlej valley. *Cur. Sci.* **10** (2) : 65-67.

1941a. Permanent labels for microscope slides. Ibid. **10** (11) : 485-486.

1941b. Indian s licified plants. 1. *Azolla intertrappea* Sahni and H. S. Rao. *Proc. Ind. Acad. Sci.* **14** (6) B : 489-499.

1942. "A short history of the plant sciences" and "The cytoplasm of the plant cell". Reviews *Cur. Sci.* **11** (9) : 369-372.

1943. *Rodeites* gen. nov. *Palaeobotany in India*—IV. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **22** (2-4) : 179-181.

1943a. A new species of petrified plam stems, *Palmoxylon sclerodermum* sp. nov. from the Deccan Intertrappean Series. Ibid. : 209-224.

1943b. Indian silicifid plants. 2. *Enigmocarpon Parijai* a silicified fruit from the Deccan, with a review of the fossil history of the Lythraceae. *Proc. Ind. Acad. Sci.* **17** (3) B : 59-96.

1943c. (With H. S. Rao). A silicified flora from the Intertrappean cherts round Sausar in the Deccan. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* **13** (1) : 36-75.

1943d. (Wite S.R. N. Rao). On *Chara sausari* sp. nov., a *Chara* (sensu strieto) from the Intertrappean cherts at Sausar in the Deccan. Ibid. **13** (3) 215-223.

1944. (With K. R. Surange). A silicified member of the Cyclanthaceae from the Teritiary of the Deccan. *Nature.* **154** : 114-115.

1944a. (With B. S. Trivedi). The age of the Saline Series in the Punjab Salt Range. Ibid. **153** : 54.

1944b. Age of the Saline Series in the Salt Range, Punjab. Ibid. **153** : 462.

1944c. The age of the Punjab Salt in the light of recent evidence. Pres. Add. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* **14** (1-2) : 49-66.

1944d. Silicified fruits and seeds from Takli, near Nagpur. C.P. (Hislop and Hunter collection). *Palaeobotany in India*—V. Ibid. : 80-82.

1945. The technique of casting coins in ancient India. *Mem. Numis. Soc. Ind.* (1) : 1-68.

1945a. (With B. S. Trivedi). Age of the Saline Series in the Salt Range of the Punjab. *Nature.* **155** : 76.

1945b. Microfossils and problem of the Salt Range geology. Pres. Add. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* **14** (6) : i-xxxii.

1945c. (With R. V. Sitholey). Some Mesozoic ferns from the Salt Range, Punjab. Ibid **15** (6) : 61-73.

1945d. Obituary Note on B. P. Sivastava. Ibid **15** (6) : 185-187.

1946. The quest for the early traces of the *Glossopteris* flora. (Introduction to C. Virki's paper, "Spores from the Lower Gondwanas of India and Australia".) Ibid. **15** (4-5) : i-iv.

1946a. A museum of evolution. *Cur. Sci.* **15** (4) : 99-100.

1946b. Permanent labels for museum specimens in damp tropical climates. *Jour. Ind. Mus.* **1** : 107-108.

1947. Microfossils and the Salt Range thrust. Opening address at the 2nd symposium on the age of the Saline Series. *Proc. Nat. Acad. Sci. Ind.* **16** (2-4) : i-l.

1947a. A silicified cocos-like palm steam, *Palmoxylon* (*Cocos*) *sundaram* from the Deccan Intertrappean beds. *Jour. Ind. Bot. Soc.* **Iyengar Commem. Vol.** : 361-374.

1947b. Palaeontology and the measurement of geological time. *Cur. Sci.* **16** (7) : 203-206.

1947c. Professor George Matthai (Obituary). *Cur. Sci.* **16** : 279-280.

1947d. Micropalaeontology in geology. Review of "Principles of Micropalaeontology" by M. F. Glaessner. *Nature* **160** : 771.

1947e. Some aspects of earth history as revealed by fossils. *Kashi Vidyapith Silver Jubilee Commem. Vol.* : 1-27.

1948. The prospects of palynology in India. *Svensk. Bot. Tidskrift* **42** (4) : 474-477.

1948a. The Pentoxyleae : a new group of Jurassic gymnosperms from the Rajmahal Hills of India. *Bot. Gaz.* **110** (1) : 47-80.

●●

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।

(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।

(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।

(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

नवम्बर 1991 विज्ञान पंजीकृत संख्या ए० डी 45

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है. यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०; आधा पृष्ठ 100.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे यह अंक : 10 रु०

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002